ओ अहल्या

डॉ. रामकुमार वर्मा

ओ अहल्या

ओ अहल्या

डॉ० रामकुमार वर्मा

O! AHALYA

by

Dr. Ram Kumar Varma

पुस्तकालय संस्करण : २०·००
प्रथम संस्करण : १९८५ विद्यार्थी संस्करण : ८·००

साहित्य भवन (प्रा०) लि०, ९३ के० पी० कक्कड़ रोड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित तथा स्टार प्रिण्टर्स, २८७ दरियाबाद, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित

आवरण व सज्जा : शिवगोविन्द पाण्डेय
कवर मुद्रित : दत्ता प्रिण्टर्स, इलाहाबाद

भूमिका

पत्र

देवि अहल्ये !

बात त्रेता युग की है किन्तु आज मैं आपको लिख रहा हूँ। उस समय की घटना की टीस आपके मन में अभी तक बनी होगी, यह मैं जानता हूँ। बात ही कुछ ऐसी है। इन्द्र को लेकर आप पर जो लांछन लगाया गया, वह नितान्त असत्य होते हुए भी विश्व भर में प्रसिद्ध हो गया। यदि तह तक बात सोची जाय, तो इसका दोष आप पर नहीं, हमारे देश के पुराण-कर्त्ताओं पर है, जिन्होंने आपके नाम में ही विष का बीज बो दिया। वैदिक साहित्य में आपका नाम एक प्रतीक के अर्थ में आया था। अहनि लीयते-इत्यहल्या -- दिन में जो लीन रहती है वह अहल्या है अर्थात रात्रि है। इन्द्र जो सूर्य का प्रतीक है वह रात्रि अर्थात् अहल्या का धर्षण करता है। दूसरा अर्थ यह भी है कि जो अ'हल्या'—हल से जोती गयी भूमि नहीं है वह अहल्या है और इन्द्र वर्षा के अधिष्ठाता देवता हैं। इससे इन्द्र अहल्या से सम्बन्ध करते हैं। प्रतीकार्थ तो ठीक है किन्तु जब पुराणों में इन प्रतीकों का विकास पात्रों के रूप में हुआ और आपको ऋषि गौतम की पत्नी बना दिया, तभी यह अनर्थ हो गया।

देवि ! आप ऋषि गौतम की पत्नी हैं। ऋषि-पत्नियों के क्या आदर्श रहे हैं, यह तो आप जानती ही हैं। आपके ही समय में ऋषि अत्रि की पत्नी अनुसूया थीं जिन्होंने अपने पातिव्रत से ब्रह्मा, विष्णु और महेश को शिशु बना कर पालने में झुला दिया और अपने पति की सुविधा के लिए चित्रकूट में मन्दाकिनी प्रवाहित कर दी। अरुन्धति थीं जिन्होंने अपने पति वशिष्ठ को ब्रह्मर्षि बना दिया, लोपा-मुद्रा थीं जिन्होंने अपने पातिव्रत से अपने पति अगस्त्य को समुद्र-पान की क्षमता दी, सुकन्या थीं जिन्होंने अश्विनी कुमारों की सहायता से अपने वृद्ध पति च्यवन को युवक बना दिया। स्वयं आपने अनेक वर्षों तक अपने पति गौतम के साथ तपस्या कर शिशु शतानन्द को जन्म दिया, जो आगे चल कर जनकराज विदेह के पुरोहित बने। इनके अतिरिक्त अनेक ऋषि-पत्नियाँ थीं, उनके नाम कहाँ तक गिनाये जायें जिन्होंने अपने महान पातिव्रत से जीवन में उच्चतम आदर्श स्थापित

किये। दुर्भाग्य से एक-मात्र आपके साथ ही यह अनुचित प्रसंग जोड़ा गया। देवि ! मेरा विश्वास है कि आपके नाम के प्रतीकार्थ ने ही मायावी इन्द्र के द्वारा धर्षण की भूमिका उपस्थित की है। यदि एक बार यह मान भी लिया जाय कि आप जैसी तपस्विनी के समक्ष इन्द्र अपने दूषित मनोभाव लेकर आया भी तो आपके सत्य के समक्ष तेज-हीन हो गया होगा। मैंने आदि कवि वाल्मीकि से बार-बार क्षमा माँगते हुए यह प्रश्न किया कि उन्होंने आपसे इन्द्र का अनैतिक सम्पर्क कराते हुए बालकाण्ड के अड़तालीसवें सर्ग के बीसवें श्लोक में यह क्यों लिखा है—

"मुनिवेशं सहस्त्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥"

अर्थात् श्री रामचन्द्र के पूछने पर विश्वामित्र ने कहा कि—"हे रघुनन्दन ! मुनिवेश में सहस्त्राक्ष इन्द्र को जान कर भी इस दुर्मति वाली अहल्या ने देवराज के प्रति कुतूहल होने से अपनी स्वीकृति दे दी।" क्या आप ऐसा कर सकती हैं ?

फिर वह (अहल्या) इन्द्र से बोली "हे इन्द्र ! मैं हृदय से कृतार्थ हूँ। हे देवताओं में श्रेष्ठ ! अब तुम यहाँ से शीघ्र चले जाओ।"

आपके विषय में ऐसा सोचना भी पाप है।

आदि कवि ऋषि-पत्नियों के आदर्श अवश्य ही जानते थे। आपके सम्बन्ध में वे ऐसा सम्भवतः इसलिए लिख गये कि उनके अवचेतन मन में क्रौंच-मिथुन की अपूर्ण जिज्ञासा ने अशान्ति उत्पन्न की होगी और उसकी शान्ति के लिए उन्होंने प्राचीन प्रतीकों का आश्रय लेकर आपके चरित्र में क्रौंच-मिथुन की भावना स्थापित कर दी। क्या इसकी सम्भावना है कि यह अंश प्रक्षिप्त हो ?

इस दुर्घटना पर आपको और इन्द्र दोनों को शाप दिये गये। ये शाप अनेक स्थानों पर भिन्न-भिन्न ढंग से कहे गये हैं। वाल्मीकि रामायण में आप अदृश्य हो वायु भक्षण करते हुए भस्म-शायिनी रहेंगी, अध्यात्म रामायण में आप शिला पर निवास करती हुई निराहार रह कर तपस्या करेंगी, तमिल के महाकवि कम्बन, तेलुगु के कवि रंगनाथ, बंगला के कवि कृत्तिवास से लेकर हिन्दी के महाकवि तुलसीदास ने भी आदिकवि वाल्मीकि का अनुसरण करते हुए आपके पाषाण में परिवर्तित हो जाने की बात कही, किन्तु ब्रह्म पुराण में शाप का रूप कुछ

दूसरा ही है। आप शाप के कारण एक शुष्क नदी में परिवर्तित हो गयीं। इसी भाँति इन्द्र को दिये जाने वाले शाप के रूपों में भी भिन्नता है। वाल्मीकि रामायण में उसे 'निष्फल' बना दिया गया। महाभारत में शाप से उसकी दाढ़ी पीली पड़ गयी।

इस भाँति इन शापों में भी अनेक अन्तर हुए हैं, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि घटना का एक निश्चित रूप नहीं है, तभी तो उसकी विकृतियाँ होती रही हैं। मेरी तो यह धारणा है कि आपने ऋषि-पत्नियों के आदर्शों का पूर्ण रूप से पालन किया है, क्योंकि आप भी अपने समकालीन ऋषि-पत्नियों के समान ही थीं, यदि इन्द्र वासना से प्रेरित होकर आपके पास आया भी तो आपका तेज इतना अधिक था कि वह पूर्ण रूप से निश्चेष्ट हो गया। उस समय आपके शरीर और मन में इस घटना की जो प्रतिक्रिया हुई, उसका चित्रण, मैंने अपने इस काव्य में किया है। इस तरह यह काव्य आपका ही आत्म-चरित्र है। आप पूर्णत: निर्दोष हैं क्योंकि महाभारत में भी महर्षि गौतम ने शान्तिपर्व (२६६-६७) में आपको निर्दोष माना है। स्वयं इन्द्र भी अपने रूप और यौवन से आपको पराजित नहीं कर सका, इसलिए महर्षि गौतम ने आपको 'अपराजिता' नाम ठीक ही दिया है।

भगवान रामचन्द्र स्वयं आपके पास आये, वे अन्तर्यामी हैं उन्हें विश्वास था कि आप निर्दोष हैं इसलिए उन्होंने आग्रहपूर्वक आपके समीप आकर आपको कृतार्थ किया।

मेरे प्रिय सहायक डा० अखिलेश तथा मेरी सुपुत्री डा० राजलक्ष्मी वर्मा और टंकणकर्त्री कु० रीता श्रीवास्तव का सहयोग सराहनीय है। पुस्तक के सुरुचि पूर्ण प्रकाशन के लिए साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद के डायरेक्टर श्री गिरीश टण्डन भी सराहना के पात्र हैं।

महर्षि गौतम जब अपना यज्ञ समाप्त कर चुकें, तो उनसे मेरा प्रणाम निवेदित कर दें। आपकी कृपा से यहाँ 'साकेत' में सब सकुशल और सानन्द हैं।

आपका
रामकुमार वर्मा

'साकेत'
४, प्रयाग स्टीट, इलाहाबाद—२
२५-४-१९८५

अनुक्रम

□ □

मंगलाचरण

जय पवन तनय ! कर लिया सिन्धु का
शत योजन-विस्तार पार—
पर चल न एक पग सके देख कर
सीता माँ की अश्रु-धार।

लाँघा था तुमने सिन्धु
वही छलका नेत्रों में बार-बार।
जननी को हो सन्तोष इसलिए
हुए कनक भूधराकार ।।

तुमने प्रभु का सन्देश दिया
माँ का रोमांचित हुआ गात।
आशीष मिला—'तुम श्री रघुपति के
अति प्रिय होकर रहो तात ।।'

'अजरामर होकर सदा बनो तुम
शील और गुण के निधान।'
आशीष मुझे भी दो कि काव्य का
पूर्ण सफल हो अनुष्ठान ।।

□ □

प्रस्तावना

विमल वरदायिनि विधात्री देवि ! परम उदार !
शारदे माँ ! तुम करो मेरा नमन स्वीकार।
दो मुझे वह काव्य-भाषा, भाव, छन्द, प्रबन्ध।
भू-गगन में फैल जाये पुण्य गाथा-गन्ध ।।

कर रहा हूँ जिस कथा का आज मैं आख्यान,
सत्य से उसके रहे सबको सही पहिचान।
वह अहल्या की कथा है, है करुण इतिहास।
हो गया जिससे कि नारी जाति का उपहास ।।

ऋषि-समर्पित वह तपस्विनि प्रात जैसा गात,
क्या हुई लांछित विलासी इन्द्र से उस रात ?
और विष-सी इस विषय की यह कलंकित बात।
विश्व भर में हो गयी क्षण-मात्र में विख्यात ।।

अदिति, अनुसूया, अरून्धति का पतिव्रत धर्म,
आज भी ऋषि-पत्नियों के कर्म का है मर्म।
अदिति का सम्पूर्ण जीवन था तपस्या-लीन,
सिद्धि होती थी प्रकट उससे नवीन नवीन ।।

उन्हीं से तो जन्म ले द्वादश हुए आदित्य,
तप-निरत कश्यप रहे आराध्य उनके नित्य।
पुण्य से परिपूर्ण उनके गर्भ का आधार—
प्राप्त कर सुत-रूप जन्मे विष्णु कितनी बार!

जिस तपस्विनि की तपस्या हो उठी साकार,
इस धरा पर ही बही मन्दाकिनी की धार।
नाम अनुसूया जगत में आज भी है धन्य,
इस तरह पति की प्रतिष्ठा कर सकी क्या अन्य?

जिस तपस्विनि ने न रोकी कभी पति की राह,
पति सदा हों अग्रसर उसकी रही हो चाह।
'ऋषि' वशिष्ठ 'महर्षि' हों उसका यही हो ध्येय,
उस अरुन्धति की तपस्या ही सदा है गेय।

रूप की रानी सुकन्या की कथा है ज्ञात,
पति च्यवन ऋषि थे तपस्वी वृद्ध जर्जर गात।
पर पतिव्रत-शक्ति ने ऐसा किया कुछ काम,
हो गये ऋषि पूर्ण यौवन-शक्ति से अभिराम।

इस स-शक्त परम्परा में पूर्णतः निष्पाप,
देश की ऋषि-पत्नियाँ सब चलीं अपने काम।
एक ऋषि-पत्नी अहल्या ही पतित हो जाय?
एक लम्पट के प्रलोभन से विवश हो जाय?

आदि कवि ने भी लिखी कुछ अटपटी-सी बात,
"मतिं चकार दुर्मेधाऽदेवराज कुतूहलात्"।
क्रौंच के उस मिथुन की ही आ गयी हो याद,
और उनकी लेखनी से लिख गया अपवाद !

यदि इसी अनुचित परिस्थिति को सही लें मान,
क्या न होगा नारियों के शील का अपमान ?
कर सकेगा कौन इनके प्रेम पर विश्वास,
क्या न कलुषित हो उठेगा सृष्टि का इतिहास ?

एक आकर्षक पुरुष के रूप का सम्मोह,
क्या सती के सत्य में ला दे कभी अवरोह ?
नहीं, यह सम्भव नहीं है, है सतीत्व महान्,
क्या कभी उपमेय को भी छू सका उपमान ?

आदिकवि ! मैं माँगता हूँ क्षमा शत-शत बार।
मैं अहल्या की कथा का वास्तविक विस्तार—
व्यक्त करना चाहता हूँ सत्य का आधार—
ले रहा हूँ, आप भी इसको करें स्वीकार ।।

इन्द्र-छलना मान लें दूषित, असत्य प्रसंग।
वासना ने दे दिया है दूसरा ही रंग।
एक पापी ही बदल दे पुण्य का इतिहास !
क्यों करे जग इस घिनौने काण्ड पर विश्वास ?

प्रात का भ्रम हो—तभी गौतम करें प्रस्थान,
इन्द्र घुस आये कुटी में देख कर सुनसान।
वेश ऋषि का रख, कहे वह प्रेम का आख्यान,
और ऋषि-पत्नी अहल्या को न हो पहिचान ?

इस कथा-सन्दर्भ के प्रति वास्तविक हो बोध,
चाहिए ऋषि-पत्नियों की भावना पर शोध।
यह तुला की है—न कन्या मिथुन की है बात,
कुंभ में तब मीन तैरे झिलमिला कर गात।।

शोध कर सद्ग्रन्थ मैं प्रस्तुत करूँ जो अर्थ,
ज्ञान के—विज्ञान के विद्वान सुधी समर्थ—
मान लें उसको तथा उस सत्य पर दें ध्यान।
माँ ! मुझे दो काव्य का ऐसा विशद वरदान।।

चरित की यह पावन भूमिका,
द्रुत विलम्बित है गति में सदा।
सहज ही यह स्वीकृत हो कथा,
विनय है तुम से यह, शारदे !

□ □

प्रथम सर्ग

प्रजापति

तरल जल की बूँद-सा ठहरा हुआ है,
विश्व मेरे हाथ की इस मध्यमा से।
सृजन की सोलह कलाएँ पूर्ण होंगी,
विश्वव्यापी रश्मि-गर्भा इस अमा से।

और प्रभु के चक्षुओं से रश्मि लेकर
सूर्य-मण्डल शीघ्र ही गतिशील होगा।
और मन से चन्द्र जब उत्पन्न होगा,
विष्णु की तन-कान्ति पा नभ नील होगा।

मन सृजन में लीन होता जा रहा है,
प्रभु-कृपा मुझ पर हुई नवनीत जैसी,
खिल गयी है व्योम में आकाश गंगा,
दिग्वधू के कंठ में संगीत जैसी।

"पूर्ण" की सम्पूर्णता का ज्ञान भी है,
त्याग पूर्वक भोग की पहिचान भी है।
आदि सृष्टा का प्रथम प्रस्तार मैं हूँ,
इस महा दायित्व का ध्रुव ध्यान भी है।

विश्व-मण्डल में सृजन का हेतु हूँ मैं,
ज्ञेय होकर पूर्ण दुर्विज्ञेय हूँ मैं!
साधना की सिद्धि द्वारा नित्य हूँ मैं,
मैं स्वयं विधि और इष्ट विधेय हूँ मैं।।

जब सुरों ने असुर-सेना को हराया,
था उन्हें निज शक्ति पर अभिमान भारी।
यह न जाना था उन्होंने एक क्षण भी,
यह सहज ही ब्रह्म की थी शक्ति सारी।।

ब्रह्म ने ही जय दिलायी है सुरों को,
सत्य का साम्राज्य जिससे सृष्टि में हो।
धर्म की धारा प्रवाहित हो निरन्तर,
शान्ति का सन्देश सुख की वृष्टि में हो।।

उन सुरों के हृदय में भारी विजय का,
जो महत्तम गर्व था उर में समाया।
दूर करने हेतु प्रभु ने ली परीक्षा,
यक्ष बन कर ही रची थी एक माया।।

आज भी वह क्षण न भूला जा सका है,
जब उन्हें प्रभु ने परीक्षा में कसा था।
अग्नि को, फिर वायु को, फिर, इन्द्र को भी—
यक्ष बन कर—भाग्य भी उन पर हँसा था।।

थे वही ये तीन जिनको सर्वदा ही,
रण-विजय का गर्व था—जो व्यर्थ ही था।
वे रहें संयत सदा अपनी प्रकृति में,
उस परीक्षा का सरल यह अर्थ ही था॥

अग्नि अपनी अनगिनत यज्ञार्चियों से,
'जात वेदा' स्वयं को ही कह रहा था।
भस्म कर दूँ सृष्टि सारी एक क्षण में,
चपलता में—यह रहा था—वह रहा था॥

एक लघु तिनका उठाया यक्ष ने था,
सामने रख कर कहा—'इसको जला रे।
अग्नि है तू और यह लघु एक तृण है,
भस्म के लघु द्वार तक इसको चला रे॥'

अग्नि प्रलयंकर लपक लेकर उठा था,
किन्तु तृण के पास जाकर कसमसाया।
तेज उसका इस तरह फीका पड़ा था,
प्राण से हो हीन जैसे रुग्ण काया॥

वायु आया और बोला गर्व से वह,
'मातरिश्वा' रूप हूँ मैं सर्वव्यापी।
सृष्टि के प्रत्येक कण में व्याप्त हूँ मैं,
इस तरह सब भाँति से मैं हूँ प्रतापी॥'

वही लघु तृण यक्ष ने सम्मुख रखा था,
'तू हिला भर दे इसे' हँस कर कहा था।
वायु झपटा वेग से उस ओर पर वह,
तृण हिलाने मात्र में असफल रहा था।।

इन्द्र आया शक्ति से सम्पन्न होकर,
सृष्टि में जो था गया "मघवन" पुकारा।
किन्तु यह क्या! यक्ष भी तो था अलक्षित,
देखने में इन्द्र था सब भाँति हारा।।

इन्द्र को संवाद का अवसर न देकर
यक्ष ने उसका महत् इन्द्रत्व तोड़ा।
वज्रधारी इस तरह दुर्बल हुआ था,
जिस तरह बादल किसी ने था निचोड़ा।।

तब सुवर्णाभूषिता विद्युतस्वरूपा
दिव्य नारी प्रकट थी अति शोभमाना।
वह उमा थी, इन्द्र ने तब प्रश्न पूछा—
'देवि! मैंने यक्ष को अब तक न जाना।।

"कौन है! वह यक्ष जिसने अग्नि की भी,
ज्वलनशीला शक्ति को निष्क्रिय बनाया।
कौन है यह यक्ष जिसने वायु को भी,
मातरिश्वा के महत् पद से गिराया?"

और मैं जो सूक्ष्मदर्शी विश्व में हूँ,
आज लोचन-हीन-सा मैं हो गया हूँ।
प्रश्नकर्त्ता यक्ष जो था—वह कहाँ है?
मैं उसे ही खोजने में खो गया हूँ॥"

तब उमा ने मुस्कुरा कर यह कहा था,
"यक्ष ही था ब्रह्म—जो है शक्तिशाली।
तुम सभी उसके निमित्त बने हुए हो,
मात्र वह कर्त्ता—सृजन उसकी प्रणाली॥

विजय जो तुमको मिली थी शत्रुओं पर,
उस विजय को मत समझना—थी तुम्हारी।
ब्रह्म की वह शक्ति थी जो साथ रह कर,
पा सकी थी शत्रुओं पर विजय भारी॥

मत करो अभिमान लघु उपलब्धियों पर,
तुम इसे प्रभु की कृपा की कोर समझो।
जब कि जीवन चक्रव्यूही युद्ध है तो,
सारथी-सा भाग्य अपनी ओर समझो॥"

ब्रह्म का या यक्ष का ही अंश हूँ मैं,
सत्यकामी मैं प्रजापति विश्वकर्मा।
चर अचर की योनियों से सृष्टि द्वारा,
कर्म-फल के घट भरूँगा सत्य-धर्मा॥

आज लगता है कि मन के कुंजवन में,
कल्पतरु की छा गयी है छाँह गहरी।
सृजन की ओ कल्पना! मेरे हृदय में,
मत मचल—ओ मत मचल, तू शान्त रह री॥

□ □

द्वितीय सर्ग

सृष्टि

ॐ प्रणव से गूंज उठे सम्पूर्ण भुवन के छोर,
तभी प्रजापति ने दृग खोले होकर आत्म-विभोर।
नभ समीप आया, समीर की आयी एक हिलोर,
अग्नि और जल भूमि सहित कुछ बढ़ आये उस ओर।।

हँसे प्रजापति देख प्रकृति का यह प्रणम्य व्यवहार,
बोले 'स्वस्ति! तुम्ही से सार्थक हैं मेरे अधिकार।
कितने ब्रह्माण्डों का मैंने आज किया निर्माण।
तुमने ही कितने जीवों में किये प्रतिष्ठित प्राण।।

भ्रमण कर रहे कितनी ही, कक्षाओं में नक्षत्र।
एक प्राण की ही गरिमा है, यत्र, तत्र, सर्वत्र।
मेरे प्रिय आकाश! महत्वाकांक्षा के विस्तार,
तुमको 'शब्द' दिया तुम फिर भी हो न सके साकार।।

हे समीर! तुमने छूने का, पाया है अधिकार।
जिससे जड़ चेतन के सुख को, जान सके संसार।
अग्नि! तुम्हीं से रूप ले सके छिपे प्रेम-सन्देश।
युगल प्रेमियों पर बरसे हैं गुरुओं के उपदेश।।

जल ! तुमने जीवन बनकर, दे दिये अमृत वरदान ।
फल-फूलों से सजा दिये तुमने, मन के उद्यान ।
भू देवी ! तुमने समेट सब तत्व प्राप्त की गन्ध ।
देव-वृन्द भी रखना चाहेंगे तुमसे सम्बन्ध ।।

तुम सब तत्वों से मन्वन्तर तक, करना निर्माण ,
मैं तप करने हेतु चाहता, करना शीघ्र प्रयाण ।
किन्तु रह गयी इच्छा मेरे मनमें अब भी शेष ,
छवि के चरम उपकरण ले मैं नारी रचूँ विशेष ।।

नारी ही है शक्ति और नारी है अनुपम भक्ति ,
नारी है तप-रूप और नारी ही है अनुरक्ति ।
नारी का यह रूप प्रकृति की है मोहक मुस्कान ,
हुई न उसके भ्रू-भंगों की कभी सही पहिचान ।।

हुआ न उस पर घटित अभी तक कोई भी उपमान ,
सब सौन्दर्य निचुड़ कर केवल निकले बूँद समान ।
अन्तिम यह निर्माण-कार्य कर मैं लूँगा विश्राम ।
तुम सब रहना सजग ले सकूँ तुमसे अन्तिम काम ।।'

श्रीभूदेवी सजग थी विनीत ,
ब्रह्माण्डों की सुगति थी सभीत ।
बोले थे वे सहज ही सप्रेम,
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

□ □

तृतीय सर्ग

अवतरण

अब प्रजापति के हृदय की रंगशाला,
सज रही थी सृष्टि के निर्माण द्वारा।
समय की गति इस तरह से बढ़ रही थी,
दूर से जैसे नियति ने हो पुकारा॥

वयः-संधि समान कितने धूप-छाँही,
रंग वाले रुचिर-भाव मचल रहे थे।
साँस की गति में न जाने कल्प युग के
वर्ष कितने एक क्षण बन ढल रहे थे॥

किस तरह से, सृष्टि-रचना में सजेगी
एक नारी की मधुरतम रूप-रेखा।
रूप ऐसा हो कि जिसको आज तक भी,
देव, दानव या कि मानव ने न देखा॥

देह के निर्माण में आकाश गंगा—
का शरद सौन्दर्य शोभा सहित भर दूँ।
वारुणी में कल्पतरु के कुसुम धोकर,
रूप-सज्जा और सुरभित मधुर स्वर दूँ॥

विश्व विजयी पंचशर के तीक्ष्ण शर की,
धार उसकी चारु चितवन पर रहेगी।
जो कि मुनियों के लिए दुर्लभ रही है,
सिद्धि उसकी कृपा पर निर्भर रहेगी।।

कमल के किंजल्क अंकित भाग्य-लिपि में
अम्ब के आशीष जैसी आयु होगी।
नासिका में नित्य नवल वसन्त ऋतु की,
गन्धवाही प्रवहशीला वायु होगी।।

यह महाकवि के मधुरतम काव्य जैसी,
कीर्ति से सम्पन्न हो, यह विमल वर दूँ।
श्याम धन से केश में विद्युल्लता की
रेख-सा सीमन्त उसके बीच कर दूँ।।

जो तपस्या की फल-श्रुति है उसी से,
भावना के साम का संचार होगा।
कुसुम की कोमल कली में कुछ छिपी सी,
कुछ उभरती लालिमा-सा प्यार होगा।।

स्वर्ग पृथ्वी की विभाजक रेख जैसी,
नासिका उसकी समुन्नत हो कसी-सी।
ॐ जैसे श्रवण की हो रूप-सज्जा
ओष्ठ में शोभा उषा की हो बसी-सी।।

शुद्ध ध्वनि से उच्चरित श्रुति सूक्त जैसा,
नव प्रभामय दिव्य उसका रूप होगा।
काम का मन भी न बाहर निकल पाये,
इस तरह उसके चिबुक का कूप होगा।।

क्षीर-सागर फेन-सी उसकी हँसी हो,
कंठ में नक्षत्र का संगीत लहरे।
हृदय में अनुराग की जो भंगिमा हो,
पा सकें उसको न सातों सिन्धु गहरे।।

कल्पना के रूप उसके इस तरह हों,
वायु में उड़ते हुए पर्जन्य जैसे।
वाक्य उसके कंठ से जिस समय निकलें,
हो उठे प्रत्येक अक्षर धन्य जैसे।।

वक्ष में शृंगार की सारी ऋचाएँ,
गूँथ दूँ स्वर-संधियों के संचरण में।
और कटि की क्षीणता ऐसी बनी हो,
समय-गति हो अल्प जितनी एक क्षण में।।

चरण उसके आचरण की रेख जैसे
दिशा ऐसी हो कि जैसे स्वर्ग-वीथी।
सृष्टि चक्रित हो कि गत मन्वन्तरों में,
अन्य सृष्टा ने न ऐसी सृष्टि की थी।।

इस तरह मेरे सृजन की रश्मियों नें
इस मनोहर रूप का है चित्र खींचा,
सृष्टि के सारे कलात्मक अवयवों नें,
दिव्यतम इस देह का प्रति रोम सींचा ।।

सब तरह से देखने के हेतु उसको,
चार कोणों में बँटी हैं ये दिशाएँ।
तारकों के बिन्दु बिखरे हैं कि उसकी
किस तरह सीमन्त-रेखा हम सजाएँ ।।

सुर सभी हैं झाँकते वातायनों से
हो उठी साकार यह जो रूप-रेखा।
मानिनी ये अप्सराएँ तेज-हत हैं,
देख तिरछी दृष्टि से यह चन्द्रलेखा ।।

है नहीं "हल्या" किसी भी भाँति से यह,
इसलिए देवी 'अहल्या' नाम होगा।
जब कि रति से भी अधिक है रूप इसका,
क्या न लज्जित विश्वविजयी काम होगा ?

मुग्ध थे—अपनी कला-कृति पर प्रजापति,
सामने थी छविमयी सन्मूर्ति माया।
वह अहल्या ज्योतिपूर्णा इस तरह थी
जान पड़ते थे प्रजापति स्वयं छाया ।।

□ □

चतुर्थ सर्ग

श्रृंगार

जब नारी का यह स्वरूप निर्मित हो गया अनूप,
प्रमुदित हुए प्रजापति—देखा दिव्य कला का रूप।
शेष रह गया करना अब इस नारी का श्रृंगार,
माया को आदेश दिया—वह ले यह रुचिकर भार।।

माया सम्मुख हुई—शब्द का अर्थ हुआ साकार,
आज्ञा थी—या सुमनों से सौरभ का स्वतः प्रसार।
देख अहल्या की उस अनुपम आभा का विस्तार,
माया भी अपनी क्षमता पर करने लगी विचार।।

सोचा—प्रभु की रचना का जैसा है रूप अपार,
उसी भाँति मुझको करना होगा उसका श्रृंगार।
प्रथम तपस्या-अग्नि प्राप्त कर ढके सजीले अंग,
फिर प्रभु-यश की ज्योत्स्ना लेकर मन में भरी उमंग।।

माँग सँवारी हास्य-प्रभा से सुलझा काले केश,
जैसे पाप-पुंज में कर ले सीधे पुण्य प्रवेश।
बेंदी में सज गया सहज ही शुभ्र द्वितीया चन्द,
नेत्रों में बस गये मौन हो, ललित अनुष्टुप छन्द।।

भौंहों में थे लिखे काम के दो छोटे-से लेख,
बसी नेत्र की रेखाओं में कुहू निशा की रेख।
वक्ष-स्थल पर नव प्रभात की कसी कंचुकी कान्त,
नक्षत्रों का हार सजाता था सारा उर-प्रान्त॥

कटि में थी किंकिणी कि जैसे नभ-गंगा की धार,
और नुपूरों में नारद की वीणा की झंकार।
सान्ध्य गगन की आभा-सी, सारी से सजा शरीर,
यह सौन्दर्य विश्व की स्वर-लिपि में था राग हमीर॥

रवि की प्रथम किरण से चरणों में था जावक-रंग,
उसकी पद-रज में बिखरा था भस्मीभूत अनंग।
अनुराधा नक्षत्र राशि-सा था कंचुकि का रूप,
कटि-तट में वर्तुल हो सिमटी माघ मास की धूप॥

सब शृंगार हो चुका तब माया ने किया प्रणाम,
'प्रभो! आप की जय हो! यह बाला तो है निष्काम।
ऐसी रचना करने में तो, सभी हुए असमर्थ,
और जान भी कौन सकेगा इस रचना का अर्थ?'

माया श्रद्धा से प्रणाम कर चली गयी सोल्लास,
किन्तु सुरक्षित रख न सकी वह मन में यह इतिहास।
सब लोकों में देवि अहल्या की गाथा का गान,
होने लगा—लगी पाने वह नये-नये उपमान॥

मृग-मरीचिका दृग-मरीचिका है समीप साकार,
इन्द्रधनुष अब इन्दुधनुष बन करे सर्व संहार।
सुर सरिता स्वर सरिता बन कर पढ़े काव्य शृंगार,
कल्पलता अब अल्परता-सी दहके बन अंगार।।

गूँज उठा था सब अधरों में दिव्य अहल्या नाम,
देव सभी उत्सुक थे देखें कब यह कृति अभिराम।
सोच रहे थे इन्द्र—"प्रथम है--यह मेरा उपहार,
मैं सुरपति हूँ, इस पर होगा मेरा ही अधिकार।।"

उधर प्रजापति के मन में उठ आयी एक तरंग,
'जाऊँगा तप हेतु, अहल्या होगी किसके संग ?
यह अनमोल रत्न है इसको पाने हेतु सहर्ष,
देवों और दानवों में हो सकता है संघर्ष।।

फिर क्या हो' कुछ क्षण बीते—माया ने किया प्रवेश,
बोली—"जय हो देव ! शीघ्र आये हैं श्री देवेश।
सेवा में प्रणाम करने की इच्छा है। आदेश ?'
कहा प्रजापति ने "कह दो—अब समय नहीं है शेष।।

घोर तपस्या हेतु मुझे अब करना है प्रस्थान,"
माया बोली—"देव ! शचीपति हैं, दें किंचित ध्यान।"
"अच्छा" कहा प्रजापति ने "कुछ-क्षण कर लें वे बात,
देवों को आता ही क्या है—घात और प्रतिघात।।"

माया ने जा शीघ्र दे दिया सुरपति को सन्देश ,
आये अति सम्मान सहित सेवा में श्री देवेश ।
ज्यों ही आये त्यों ही देखा दिव्य अहल्या-रूप
भिक्षुक जैसा दीन हो गया, अभिमानी सुर-भूप ।।

दिव्यतम सौन्दर्य था यह सामने
बेध डाला पुष्प-शर से काम ने ।
रह गये वे मौन अपलक देखते ,
भाग्य से सौभाग्य अपना लेखते ।।

पुरुष-नारी का नियति-सम्बन्ध है ,
मिलन का या विरह का अनुबन्ध है ।
भावना मन में उठी मनभावनी ,
शीघ्र मेरी हो सके उर-शायिनी ।।

मैं न छोड़ूँगा इसे अधिकार से
प्यार से, सत्कार से, मनुहार से ।
पद पखारूँगा नयन के नीर से ,
मैं हँसाऊँगा हृदय की पीर से ।।

सोचते ही रह गये क्षण-मात्र वे ,
इस समय उपहास के थे पात्र वे !
मुस्करा कर तब प्रजापति ने कहा ,
"देवपति ! अच्छे समय आये, अहा !"

तब प्रजापति का हुआ संकेत था
पार्श्व में जो एक सौध निकेत था,
दृष्टि नीचे कर अहल्या ने उधर
कर दिया प्रस्थान स्पन्दित कर अधर ॥

"यह अहल्या है हमारी आत्मजा,
श्रेष्ठ विधि से ही इसे मैंने सृजा।
नव सृजन का कलापूर्ण प्रयत्न यह,
सृष्टि का अति श्रेष्ठ नारी रत्न यह ॥

किसे सौंपूँ जब तपस्या के लिये—
मुझे वन में शीघ्र जाना चाहिए।
सोचता हूँ... ...." "मैं समय पर आ गया।
बीच में सुरराज बोले—"हो दया ॥

"देव! यह दायित्व मुझ पर छोड़िए,
रत्न है यह मात्र मेरे ही लिए।
मैं रखूँगा रत्न यह प्रासाद में,
मोद में—आनन्द में, आह्लाद में ॥

श्रेष्ठ ऐरावत रहेगा द्वार पर
स्वर्ग-वीथी धन्य हो पद-चार पर।
अप्सराएँ नृत्य अथवा गीति से,
नित्य ही सेवा करेंगी प्रीति से ॥

मैं शची से भी कहूँगा 'जय' कहो
प्रिय अहल्या को न कोई कष्ट हो।
यह प्रजापति की मनोरम सृष्टि है
धन्य ! मुझ पर यह कृपा की दृष्टि है ॥"

इस प्रशंसा पर प्रजापति हँस पड़े
इन्द्र भी लज्जित हुए-से कुछ गड़े।
कंठ में कुछ शब्द अटके रह गये,
जो न कहना चाहते थे कह गये ॥

चाहते थे यह, 'प्रजापति ही स्वयं
प्रार्थना करते—"तपस्या हेतु हम—
जा रहे हैं, इसलिए यह आत्मजा—
हो तुम्हारे स्वर्ग ही की प्रिय प्रजा ॥

प्रेम से रखना इसे सद्भाव से,
कष्ट इसको हो न स्नेहाभाव से।"
पर अहल्या देख हम कुछ दूसरी,
बात कह बैठे महा लज्जा भरी ॥

स्वयं कह दी बात निज आभार की
और पत्नी ध्वनि करे जयकार की,
धिक् ! शचीपति सोमरस तू पी गया
राज-पद से इस तरह तू गिर गया !'

इन्द्र चिन्ता-मग्न है, यह देखकर,
तब प्रजापति ने कहा—"हे सुर प्रवर,
जानता हूँ, तुम अहल्या के लिए
सब करोगे जो शची को चाहिए ॥
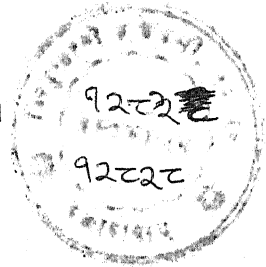
पर अहल्या तो शची से भिन्न है,
एक योगी भोगियों से भिन्न है!
स्वर्ग-वैभव की सुचित्रित प्रिय कथा,
यह अहल्या के लिए है सब वृथा ॥

वह तपस्या-पूत है शुचि मंगला,
क्या लगेगा स्वर्ग भी उसको भला?
डाल दोगे वासना के व्यूह में,
क्या रखोगे रत्न काँच-समूह में?

जानते हैं सब नहीं इतिहास क्या?
सोमपायी व्यक्ति का विश्वास क्या?
सृष्टि में सुख मात्र जो है जानता
मान सतियों का भला कब मानता?"

"मानता हूँ और देव! सराहता
हूँ अहल्या को हृदय से चाहता"
"चाहने की इस मनोरम भूल में—
दीखता है कीट विकसित फूल में ॥"

'नहीं प्रभु ! रक्षित रखूंगा नेम से,
योग से, अति क्षेम से, अति प्रेम से।''
''प्रेम में आ जायगी फिर वासना
अमृत में विष-बिन्दु भी होगा सना।।

प्रेम नाटक ही रहेगा स्पष्ट ही
देखकर, होगा शची को कष्ट ही।
प्रेम होगा स्वप्न केवल सुनहरा,
क्या अहल्या भी न होगी अपसरा ?

ध्यान तुमको है न दिन का, रैन का
तुम अहल्या को न समझो मेनका।''
तड़प कर तब इन्द्र बोला—''प्रभु ! मुझे,
मारते हैं बाण क्यों विष के बुझे ?

क्या विलासी मात्र मुझको मानते ?
युद्ध-प्रेमी क्यों न मुझको जानते ?
असुर वृत्रासुर पराजित कर चुका
वज्र से मैं जीत अंकित कर चुका।''

मुस्करा कर तब प्रजापति ने कहा
''जीत का अभिमान अब तक है रहा ?
जीत ? किसकी जीत थी यह जान लो
शक्ति किसकी थी—यही तुम मान लो।।

वज्र-क्या वह प्रेयसी-भ्रू-भंग था ?
वज्र वह तो मात्र मानव-अंग था।
एक मानव-अस्थि का उपहार था,
स्वर्ग पर यह भूमि का उपकार था ।।"

इन्द्र लज्जित हो गया नत भाव से,
फिर कहा कुछ विनय के अनुभाव से।
"छोड़िए, वह तो पुरानी है कथा,
देव ! समझें आज की नूतन व्यथा ।।

आप मुझको दें अहल्या या न दें
दें मुझे सम्मान या अपमान दें।
किन्तु कहता हूँ यथा शुचि भाव से,
आप परिचित हैं समस्त स्वभाव से ।।

स्वर्ग में इनको रखेंगे प्रभु ! जहाँ,
युद्ध निश्चय ही, विकट होंगे वहाँ,
देव-दानव भी लड़ेंगे रोष से
अतः मुझको दीजिए सन्तोष से ।।

देव ! भिक्षा माँगता हूँ आपसे
रत्न दें यह आप वर या शाप से।
ये न होंगी उर्वशी या मेनका,
ध्यान होगा मात्र सुख का, चैन का ।।

शपथ लेता हूँ समस्त विधान से
मैं अहल्या को रखूँगा मान से।"
तब प्रजापति ने कहा गम्भीर हो,
"वीर! तुम चिकने घड़े के नीर हो॥

तुम भले ही शपथ पर फिर लो शपथ,
किन्तु सुविदित हैं तुम्हारा प्रेम-पथ।
यह रजत का रज्जु केवल सर्प है,
शपथ लेना भी तुम्हारा दर्प है॥"

मौन थोड़ी देर तक ही जब रहा—
स्वस्थ चिन्तन कर प्रजापति ने कहा—

साधना से शून्य है यह स्वर्ग सारा,
मात्र वह भू-लोक है मेरा सहारा।
देव से मानव महान् सदा रहा है,
अमृत-निर्झर भूमि-तल से ही बहा है॥

हैं वहाँ पर एक ऋषि सच्चे मनस्वी,
नाम गौतम है सदा से हैं तपस्वी।
मैं उन्हें ही यह अहल्या सौंप दूँगा,
शान्ति से जब तक तपस्या मैं करूँगा॥"

फिर अहल्या को बुलाया और सारी—
बात कह बोले—"सुनो इच्छा हमारी—
निज तपस्या में करें रक्षा तुम्हारी
भूमि पर ऋषिवर्य गौतम ब्रह्मचारी॥

पर शचीपति, चाहते अमरावती में,
क्या तुम्हें विश्वास है विनयी यती में ?
इन्द्र है इस ओर, हैं उस ओर गौतम,
स्थिर कहाँ होगा तुम्हारे राग का सम ?

यह बताओ किस दिशा में दृष्टि होगी ?
स्वर्ग पर या भूमि पर सुख-वृष्टि होगी ?"
रात्रि के अवसान पर पहली किरण-सी,
पूर्व में उजली उषा के अवतरण-सी ।।

मन्दवाणी तब अहल्या के अधर से—
खिल उठी जैसे सुरभि हो मानसर से—
"प्रभु ! प्रणत हूँ–पुण्य के प्रति प्रथम मेरा प्यार है ;
आपका निर्णय मुझे सर्वत्र ही स्वीकार है।"

इन्द्र से फिर यह कहा 'देवेन्द्र ! क्या न अनर्थ है ?
प्रेय का मन में नहीं जब श्रेय-सम्मत अर्थ है ?
यह सुना मैंने कि सुरपति भीख मेरी चाहते ।
क्या प्रजापति की दया या प्रेम मेरा थाहते ?

आपके राजत्व में क्यों भीख का संस्कार है ?
भीख की ही भाँति पाया स्वर्ग पर अधिकार है ?
शक्तिशाली के लिये भिक्षा भयानक पाप है,
भिक्षुओं के हाथ में वर, वर नहीं अभिशाप है ।।

आप अब जाएँ, बचाएँ जो प्रतिष्ठा है बची
आपकी अपलक प्रतीक्षा कर रही होगी शची ।।

शिखा जली थी अति भव्य रूप से ,
पतंग आया करता परिक्रमा ।
परन्तु पूरा जल भी नहीं सका ,
विदग्ध वंशस्थ सुरेन्द्र था हुआ ।।

□ □

पंचम सर्ग

महर्षि गौतम

प्राची के अरुण ओष्ठ-रवि से ,
उच्चरित हुआ मांगलिक मंत्र ।
क्रमशः परिचालित हुए प्रकृति के ,
विविध भाँति के तंत्र - यंत्र ।।

जागा सारा संसार, अंकुरित
हुए स्वरों के सब प्रकार ।
झंकृत जैसे हो गये प्रकृति की ,
मधुर बीन के सप्त तार ।।

सद्यः विवाहिता की लज्जा - सा ,
नवल प्रभा का है प्रसार ।
पल्लव पल्लव में लगी अरुण ,
किरणों की पतली-सी किनार ।।

अनुकूल भाग्य की भाँति प्रवाहित ,
हुआ मन्द मलयज समीर ।
खिल गये सुमन, बह गयी सुरभि —
की एक तरंगित - सी लकीर ।।

चहके खग वृन्द सरस कलरव—
का था मानों कविता - कलाप ।
किरणों ने तरुओं पर पड़ कर
छाया में उनकी लिखी नाप ।।

जो बादल थे रवि के समीप ,
उनका रँग था अति चटक लाल ।
सच है, स्वामी के जो समीप हैं
तिलकांकित है भव्य भाल ।।

चलिए, देखें वह भव्य भूमि
जो है मिथिला के कुछ समीप ।
जैसे कि प्रकृति के हरे सिन्धु के
तट पर कोई खुली सीप ।।

विस्तृत प्रांगण पर बिखरा है
निखरा-सा अति कोमल प्रभात ।
है उटज कि जिस पर पारिजात
पल्लव-से छाये हरे पात ।।

यह ऋषि गौतम का आश्रम है ,
वैदिक विधान से तपः पूत ।
इसमें श्रुति मंत्रों की ध्वनि का
मृदु गुंजन संचित है प्रभूत ।।

इस ओर एक है हवन कुण्ड
जिसमें उठता है धूम-पुंज।
हो गये सुवासित हैं उससे
विस्तृत आश्रम के लता-कुंज॥

जब रवि-किरणों में धूम
घूम जाता है ले तिरछा प्रसार।
तो लगता है जैसे गंगा में
यमुना की मिल रही धार॥

जो अतिथि यहाँ आते हैं उनके
हेतु उटज हैं एक ओर,
कलरव करते हैं भाँति भाँति—
से नीलकंठ, चातक, चकोर॥

आते हैं वटुगण कभी-कभी
पाने शिक्षा का मूल मन्त्र,
मृग-शावक मुनियों सहित यहाँ पर,
विचरण करते हैं स्वतन्त्र॥

ऋषि गौतम का है तेज
और इस आश्रम पर उनका प्रभाव।
हिंसक पशुओं ने दिया छोड़
स्वाभाविक हिंसा का स्वभाव॥

ऋषि देह-यष्टि है सुदृढ़
निकलता रहता जिससे दिव्य ओज।
मृदु वाणी में है रश्मि कि जिससे
खिल उठते मन के सरोज॥

मस्तक पर चिन्तन रेख
सांख्य दर्शन का जैसे सूत्र एक,
जो भी आता उनके समक्ष
जाग्रत हो उठता है विवेक॥

उनके नेत्रों की दृष्टि सृष्टि के
खोल चुकी है सभी द्वार।
उनके तप का आधार पा गये
जो रहस्य थे निराधार॥

उनके तेजोमय ब्रह्मचर्य से
ज्योतिर्मय है रोम-रोम,
जीवन की सभी वासनाएँ,
उनके तप में हो चुकीं होम॥

जो उटज बने हैं पास वहीं से,
ऋषि बालाएँ आती हैं।
ऋषि गौतम के नित यज्ञ—
याग की परिचर्या कर जाती हैं॥

जो उपवन में हैं लता - पेड़
वे उन्हें सींचती, गाती हैं,
कंकण की क्षण-क्षण मृदु ध्वनि कर
वे मुग्ध मयूर नचाती हैं ॥

नाना प्रकार के कन्द-मूल वे प्रथम खिला कर खाती हैं ।
वे आश्रम रखती स्वच्छ और आहार वस्तुएँ लाती हैं,
वे हरिण शावकों को चौंका कर फिर-फिर अंक लगाती हैं ।
वे शुकों सारिकाओं को प्रतिदिन नये श्लोक सिखलाती हैं ॥

पढ़ो शुक ! विष्णुर्विचक्रमे............
'विष्णुर' 'कहकर कल भी तुम क्यों इसी तरह थे थमे ?
किसी नाटिका में सुनकर तुम कहो न "हा ! प्रियतमे !"
उचित नहीं है, इन बातों में हृदय तुम्हारा रमे ।
अभी-अभी तो कितने अच्छे नये पंख हैं जमे ।
यह अभ्यास तुम्हारा हे शुक ! किसी तरह न कमे ॥
पढ़ो शुक ! विष्णुर्विचक्रमे............

सारिके ! गा दे सुमधुर गीत ।
स्वर इतना है मधुर कि जैसे नया-नया नवनीत ।
यह वसन्त ऋतु साथ - साथ तेरे स्वर का संगीत,
सुधा - धार है वसुधा पर, होता है यही प्रतीत ।
इस स्वर से मुनियों का मन भी तू सकती है जीत,
सुन पाये तो आ जायेगा, कोई मन का मीत ॥
सारिके ! गा दे सुमधुर गीत ।

ऋषि - बालाएँ इसी भाँति
आमोद-प्रमोद मनाती हैं,
लता पुष्पमय हुई कि वे
मंगल के साज सजाती हैं ।।

गुरुवर गौतम की सेवा में,
अपने दिवस बिताती हैं।
कभी परस्पर बातें करती,
हँसती और हँसाती हैं ।।

एक नयी ऋषि-बाला जो
अपने आश्रम में आयी है।
उसके मन को इस आश्रम की
अभिनव शोभा भायी है ।।

एक सखी ने पूछा—"सखि !
आश्रम में कौन नयी बाला—
जिसका उज्ज्वल वर्ण प्राप्त कर
जगमग हुई पर्ण - शाला ?

अनुपम है सौन्दर्य, उषा की
किरणों जैसी काया है,
सुमनों - सा सौरभ समस्त
साँसों में सहज समाया है ।।

उठती है मंगल प्रभात - सी
वाणी भी श्रुतियों - सी है,
जिसकी दिन - चर्या समस्त
सत्कवियों की कृतियों - सी है ।।

गुरु गौतम की गरिमा ही,
उसके गौरव की गाथा है।
उनके पद - पद्मों पर प्रतिदिन
प्रणत प्रेम से माथा है ।।

क्या है उसका नाम और
गुरुवर से कैसा नाता है ?
उसका अपनापन मुझ में भी,
अपनापन ले आता है ।।"

उत्तर दिया सखी ने—"सचमुच
मैं भी ऐसा पाती हूँ।
जब वह गाती है तो लगता
जैसे मैं ही गाती हूँ ।।

कहते हैं—कुछ सोच समझ कर
यहाँ प्रजापति आये थे।
अपने साथ इसी बाला को
इस आश्रम में लाये थे ।।

जाने क्यों आश्रम में इसके
आते ही आभा आयी।
विहगों के कंठों में जैसे
स्वर की सुरसरि लहरायी॥

नाम 'अहल्या' है इसका
अब तक निष्कलुष कुमारी है।
शरद शर्वरी की शोभा
सुन्दर शरीर पर वारी है॥

बोले थे प्रजापति हमारे गुरुदेव जी से,
यह है अहल्या, मेरी आत्मजा कुमारी है।
इसकी सुरक्षा हेतु लाया हूँ तुम्हारे पास,
जान लेना थाती यह पावन हमारी है॥

जाता हूँ तपस्या हेतु कुछ काल के लिए ही,
तब तक रक्षा करो, यही चिन्ता भारी है।
गौतम महर्षि तुम हो महान् ब्रह्मचारी
प्रबल प्रतीति प्रीति मुझको तुम्हारी है॥

तब से यही अहल्या अपने
आश्रम में करती है वास।
इसकी कुटिया बनी हुई है
गुरुवर के आश्रम के पास॥

गुरुवर के प्रबन्ध में ही है
इसकी सुविधा और सुवास।
उसे नहीं होने देते हैं
किंचित चिन्ता का आभास॥

उसकी रक्षा में ही गुरुवर का,
रहता है पूरा ध्यान।
वह भी तो दिन-रात किया करती
उनकी सेवा सुख मान॥

यज्ञ-हेतु समिधा लाती है
पूरा करती यज्ञ-विधान।
यथा समय करती है वह
श्रुतियों का कोमल स्वर से गान॥

करती वेदाध्ययन और
देती है वह चिन्तन में योग।
उसने भुला दिया है अपने
जीवन का सारा सुख-भोग॥

प्रतिभा उसमें है निसर्गगत
दिव्य दीखते हैं संस्कार।
लगता है वह किसी देवकन्या
का है अनुपम अवतार॥

प्रातः उपवन में जाती है
उषा-किरण उगने के साथ,
चुनती है प्रसून या वे ही
आ जाते हैं उसके हाथ ॥

वल्कल वस्त्रों से भी उसका
बढ़ता है सौन्दर्य विशेष ।
उसने बना लिया है अपना
एक तपस्विनि जैसा वेश ॥

सहज भाव सब से मिलती है
पर रहती है कुछ गंभीर ।
जैसे पत्थर से ठोकर
खा जाय लहर सरिता के तीर ॥

हार गूँथते हुए उँगलियाँ
हो जाती हैं गति से हीन ।
जैसे सहसा किसी भावना में
वह हो जाती है लीन ॥"

ऋषि - बालाओं ने जब देखा
नये फूल चुन कर सोल्लास—
वनदेवी की भाँति अहल्या
आयी है अशोक के पास ॥

किया नेत्र-संकेत परस्पर कर धीमें-से स्वर से बात।
चली गयीं वे, हो न अहल्या के चिन्तन में कुछ व्याघात ।।

हार गूँथती रही अहल्या एक-एक वह लेकर फूल।
कभी कभी अपने चिन्तन में हार गूँथना जाती भूल ।।

"अच्छा, ये सखियाँ सब धीरे से चली गयीं
बार-बार मुड़कर वे पीछे देखती हैं क्यों?
करती संकोच सभी बात करने में हैं
क्यों करती हैं? मैं तो बोलती हूँ सब से ।।

सौम्य भाव से ही इस भाँति मिलती हूँ मैं,
जैसे मिलती है कोई लहर किनारे से।
सहज संकोच या कि इन्हें भय होता है
पूछने में किस भाँति रहती यहाँ हूँ मैं ।।

कई वर्ष, मास, दिन बीत गये जब से
लगता है जैसे मैं यहाँ पर कल आयी हूँ।
आश्रम में रहती हूँ गुरुवर की सेवा में
सोती हूँ मैं अन्त में ही, जागती हूँ पहले ।।

जीवन-रहस्य मेरा इस भाँति है छिपा
जैसे एक कली प्रातः फूल बन जाती है।
मैं भी इस जीवन का अर्थ नहीं जानती
पिता प्रजापति का क्या हेतु है सृजन में!

इतना सौन्दर्य क्यों प्रदान किया मुझको?
विश्व भी तो चौंक उठा था कि हुई जब मैं।
मैंने प्रजापति पिता-कक्ष से ही झाँका था,
देवराज इन्द्र मुझे देख ललचाये थे॥

मैंने यह भी तो सुना स्पष्ट इन कानों से
प्रार्थना ही की नहीं थी किन्तु भिक्षा माँगी थी।
देवराज ने, कि मुझे दीजिए इस रत्न को
रक्षा मैं करूँगा देव! पूर्ण मनोयोग से॥

किन्तु पिता ने कहा था यह तीव्र घोष से
तुम इस रत्न के तो सर्वथा अयोग्य हो।
ध्यान नहीं तुमको है दिन या कि रैन का
समझो अहल्या को न उर्वशी या मेनका॥

नाम गुरु गौतम का लेकर यही कहा
रत्न यह सौंप दूँगा गौतम महर्षि को।
वे ही एक मात्र तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी हैं
जो कि इस रत्न की सुरक्षा में समर्थ हैं॥

मुझसे भी पूछा था कि इच्छा क्या मेरी है ?
मेरे अंग तो तपस्या-पूत थे प्रथम ही
किसे स्वीकार करूँ इन्द्र को या ऋषि को ?
मैंने उस क्षण ही तो कहा था देवेन्द्र से ।।

"इस तुम्हारे स्वर्ग में देवेन्द्र ! क्या न अनर्थ है ?
प्रेय का मन में नहीं जब श्रेय-सम्मत अर्थ है ।।"

लालच दिया था मुझे प्यार-भरे शब्दों में
ऐरावत आता मेरे द्वार पर नित्य ही ।
शची सेवा-लीन होती चरण पखारती
अप्सराएँ नाचतीं सदैव मेरे सामने ।।

मधुर स्वरों में गीत गातीं, सोम पान में...... "
अह्, यह हुआ क्या जो कंटक-चुभा मुझे ?
फूल में लगा हुआ-सा, कैसे चला आया है !
हार गूँथने में इसे देख ही नहीं सकी !

ऐसी डूब-सी गयी मैं अपने विचारों में
सम्भव है, मेरे दुष्ट चिन्तन का दोष है ।
कैसे इन्द्र का प्रसंग पैठा इस मन में ?
कैसे दिशा भावों की है इस भाँति बदली ?

पाप शान्त ! पाप शान्त ! प्रभु, क्षमा कर दो ।
इन्द्र और इन्द्रियों की बात यहाँ क्यों रहे ?
मेरे गुरुदेव का पवित्र यह आश्रम है,
कंटक ने मुझको सचेत जैसे है किया ।।

छोड़ दूँगी कंटक - अरे ये फूल अब तो,
नाना रंग के सरोज हैं उन्हें सजाऊँगी।
उनकी ही माला आज प्रेम से बनाऊँगी।
प्रातः सरोवर से मैं चुन कर लायी हूँ ॥

कैसे सुकुमार दल हैं ये अभी बन्द हैं
इनको सम्हाल कर खोलूँ दल टूटे ना।
अरे, इस कमल के भीतर ही छिपके
कैसे षट्पट ने प्रवेश किया चोरी से ?

रस-पान करने के हेतु चुपचाप ही,
आ गया है और उड़ना ही नहीं चाहता ?
निकल यहाँ से दुष्ट ! छद्मवेशी चोर तू,
उड़ जा, नहीं तो तेरे पंख तोड़ दूँगी मैं ॥"

झटके से भ्रमर गिरा था एक झाड़ी में
और लो अहल्या ने भी साँस एक गहरी।
ऋषि-पूजा हेतु माला गूँथी प्रेम-भाव से
मुग्धा मानिनी की मंजु माला थी मृणालिनी ॥

कैसी मनोहर यहाँ सुषमा सजी है !
साकार रुप यह है ऋषि की तपस्या !
यों ही समस्त ऋतुएँ सुखदायिनी हैं
तो भी वसन्ततिलका भय है अहल्या ॥

□ □

षष्ठ सर्ग

आगमन

उषा देवि ने खींची थी मंगल प्रभात की रेखा,
आश्रम ने अपने भविष्य का नया चित्र था देखा।
आश्रम-वासी एक गया था कन्द-मूल फल लेने
उसने आकर कहा कि देखा दिव्य दृश्य है मैंने ।।

एक सूर्य तो पूर्व क्षितिज में उज्ज्वल किरण बिखेरे
उसी दिशा में सूर्य दूसरा उगा सामने मेरे।
पूज्य प्रजापति इसी दूसरे सूर्य-सदृश थे आते,
खग मृग जीव जन्तु भी उन पर मोहित हो रुक जाते ।।

उन्हें देख उल्लसित हुआ मैं रख चरणों पर माथा,
लगा सोचने धन्य हुआ जो इसी ओर आया था।
हलकी-सी मुस्कान-रेख उनके मुख पर झलकी थी,
जैसे प्रेम-सरोवर से तट पर तरंग छलकी थी ।।

उसने आकर आश्रम में यह शुभ संवाद सुनाया,
जहाँ-तहाँ उल्लसित स्वरों ने रह रह कर दुहराया।
ऋषि-बालाएँ चलीं आरती-थाल अनेक सजाने,
मुदित अहल्या नाच उठी थी अभिनव दर्शन पाने ।।

उसने नील कमल में जैसे प्राण-प्रदीप जलाया,
चन्दन-चर्चित उसे आरती जैसा रूप बनाया।
ऋषि गौतम आश्रम से निकले करने को अगवानी
साथ अहल्या थी नेत्रों में भरे अर्घ्य का पानी।।

आश्रमवासी सभी प्रेम से स्वागत-गीत सुनाते
कोई आगे बढ़कर कंटक-हीन मार्ग कर आते!
पथ पर फूल बिछे, पथ-मुख पर गये चौक थे पूरे
चन्दन केसर-जल से सिंचित थे यज्ञ-स्थल पूरे।।

वे प्रजापति आ रहे हैं—आ गये
प्रणत प्राणी प्रिय परम पद पा गये।
दीखते थे दिव्य दर्शन देह के
नेत्र नूतन नील निधि थे नेह के।।

मन्द मृदु मोहक मधुर मुस्कान थी
हस्त-मुद्रा थी अभय के दान की।
भस्म-भूषित भव्य उनका भाल था
रश्मि-रंजित उर-प्रदेश विशाल था।।

हरित वल्कल-वस्त्र कटि में था कसा
प्रकृति का सौन्दर्य सारा था बसा।
पादुकाएँ थीं पदों में सज रहीं,
दिव्य ऐसी छटा देखी थी नहीं।।

ऋषि गौतम ने किया नमन—बढ़कर अभिनन्दन—
मस्तक चर्चित किया लगाकर केसर चन्दन।
ऋषि बालाओं से लेकर आरती उतारी,
मंत्रों से कर स्तवन खिली मंजरियाँ वारीं।।

ला आश्रम में उन्हें, दिया वेदी पर आसन,
पूछा उनसे कुशल-क्षेम करके अभिवादन।
कन्द-मूल-फल किये समर्पित अति आदर से,
उन पर सुरभित सुमन बड़ी श्रद्धा से बरसे।।

सब कार्यों में प्रमुख अहल्या ही रहती थी,
सप्त सरोवर की गंगा-सी वह बहती थी।
इतने वर्षों का वियोग अब दूर हुआ था,
आश्रम में आनन्द आज भरपूर हुआ था।।

अनूठी शोभा से सहज मन से मंजु स्वर से,
सदा ही गाती थी सकल श्रुतियाँ साम विधि से।
निराली सेवा में निरत रहती और हँसती।
सभी बालाओं में प्रिय अहल्या थी शिखरिणी।।

□ □

निर्णय

बीते दिवस, प्रजापति को—
आश्रम लगता पहिचाना-सा,
गौतम ऋषि का तपस्त्याग भी,
लगता उनको जाना-सा ॥

उन्हें पक्षियों का कलरव था,
सामवेद का गाना-सा।
विह्वलता से गिरा अश्रु—
लगता मोती का दाना-सा ॥

पहली-सी उनको लगती थी,
सुमुखि अहल्या व्रत वाली।
जैसी वह इस आश्रम में,
आयी थी अति भोली-भाली ॥

पड़ती कोकिल-कूक कभी,
उसके कानों में मतवाली।
तो आ जाती सहज कपोलों—
पर कुछ हलकी-सी लाली ॥

उपवन में जाती है तो,
भ्रमरों से राग मिलाती है।
लतिकाओं से बातें करके
परिजन उन्हें बनाती है।।

कभी सरोवर के जल में निज,
छाया देख लजाती है।
कभी पक्षियों के कलरव में,
गाती मधुर प्रभाती है।।

लगा प्रजापति को,
कि अहल्या का विवाह हो जाना है।
पत्नी का दायित्व उसे
'स्वाहा' की भाँति निभाना है।।

इस जीवन में महामुक्ति का,
मन्त्र उसे अब पाना है।
जान सके गार्हस्थ्य धर्म,
मुनियों का जो अनजाना है।।

किन्तु कौन होगा इसका पति,
जो तप का अधिकारी हो।
जिससे माया की मरीचिका,
सभी भाँति से हारी हो।।

शम-दम नियम आचरण की
जिसमें पवित्रता सारी हो,
मेरी है मान्यता अहल्या,
उसी पुरुष की नारी हो ।।

ऋषि गौतम हैं श्रेष्ठ उन्हें ही
सौंपी थी मैंने थाती,
रही अहल्या पास उन्हीं के,
आश्रम के सब सुख पाती ।।

अनाघ्रात वह पुष्प सदृश है
वैसी ही मन को भाती ।
ऋषि का ब्रह्मचर्य ऐसा है,
मन में श्रद्धा हो आती ।।

देख अहल्या की सुन्दरता
कभी इन्द्र था ललचाया ।
उसने निज गरिमा गायी थी,
पर न चली उसकी माया ।।

कैसे उसे अहल्या देता
भुक्तिभरी जिसकी काया ?
गौतम ही उपयुक्त पात्र होगा,
जिसकी वह हो जाया ।।

ऋषि गौतम के विमल नाम में,
जो भी हो अन्तिम व्यंजन,
उसे अहल्या का प्रथम स्वर
पूर्ण करेगा आजीवन ॥

एक शिष्य ने बात कही तो
ऋषि मुस्काये मन ही मन,
और अहल्या की लज्जा से
झुकी रह गयी थी चितवन ॥

अतः अहल्या सौंपूँगा
गौतम को—वे स्वीकार करें,
मैं तो शीघ्र चला जाऊँगा
मुझ पर यह उपकार करें ॥

अब तक अतिथि अहल्या थी
अब पत्नीवत् व्यवहार करें,
अपना यज्ञ-याग पूरा कर
गौतम पति को प्यार करें ॥

अपना निर्णय देता हूँ मैं,
हो विवाह की तैयारी,
शीघ्र निमंत्रण ऋषियों को दो,
उत्सव हो मंगलकारी ॥

कदलि-स्तम्भ का मंडप हो
हो मंगल-सामग्री सारी।
विश्वावसु की करो प्रार्थना,
सजे अहल्या सुकुमारी ।।

जब विवाह महोत्सव की छटा,
विहँसती इस आश्रम में सजी,
तब शची-पति के उर में महा,
द्रुत विलंम्बित-सी घटना घटी ।।

वह शची पर क्रोधित हो उठा,
गुरु बृहस्पति के प्रति मौन था।
सुरपुरी अति निष्प्रभ हीन थी
सकल हास - विलास समाप्त थे ।।

□ □

अष्टम सर्ग

परिणय

गीत मंगल के गाओ री !
शुभ विवाह के इस अवसर पर,
मोद मनाओ री ! गीत०

पथ पथ पर मन्मथ के रथ ज्यों
चौक पुराओ री,
ललित लताओं के मंडप में,
सुमन सजाओ री ।। गीत०

मंगल घट चित्रित कर उनमें
नीर भराओ री।
कदलि-स्तंभ के द्वार बना—
अहि-बेल चढ़ाओ री ।। गीत०

सींच अरगजा केसर कुंकुम
रंग रचाओ री।
आज अहल्या के परिणय में
कलश उठाओ री।
गीत मंगल के गाओ री !

पूज्य पितामह की आज्ञा से,
थी विवाह की तैयारी,
ऋषिगण आये, साथ-साथ,
ऋषि-कन्याएँ आयीं सारी ।।

कितने वर्षों बाद महोत्सव का,
नूतन अवसर आया,
लगता था जैसे कि मोक्ष ने,
अर्थ-धर्म का फल पाया ।।

चारों ओर लता-पुष्पों के
कितने मण्डप छाये थे!
मानो स्वर्गपुरी के भूषित
भवन भूमि पर आये थे ।।

वन्दनवार लगे थे चारों ओर
द्वार के कोने से,
वेणु हरिद्रामय मानो वे
मढ़े हुए थे सोने से ।।

मण्डप में वेदिका बनी थी
सजी पुष्प-मालाएँ थीं,
वधू-सदृश थी बनी अहल्या,
साथ सजी बालाएँ थीं ।।

भूर्ज - वृक्ष के वल्कल से
सुकुमार शरीर सजाया था,
कुसुम - भूषणों की सज्जा में
नवल वसन्त समाया था।।

पुष्पों द्वारा सजी शीश पर.
चारु चन्द्रिका की झांकी,
जैसे वर्तुल रेख खिची है,
रजत शिखर की सुषमा की।।

सारी शोभा जैसे रति के,
परिणय की अगवानी थी।
जो ऋषि-मुनियों के विचार से,
जानी थी, पहिचानी थी।।

यज्ञ-धूम जैसे संचित था,
उन केशों की वेणी में,
श्रुतियों के थे वर्ण खिले
कितने फूलों की श्रेणी में।।

केसर - सा अनुराग चारु
चर्चित था सारे अंगों में,
था लघु स्वरित उदात्त और,
अनुदात्त व्यक्त भ्रू-भ्रंगों में।।

माथे पर पत्रावलि थी,
जैसे हो गंगा की धारा।
झिलमिल कुंकुम-बिन्दु चमकता,
था बनकर मंगल तारा।।

नेत्रों में पतला अंजन
जैसे कि राहु की रेखा हो,
शीतल दृष्टि श्वेत कमलों ने,
जैसे खुल कर देखा हो।।

मृगमद का लघु बिन्दु चिबुक पर,
इस प्रकार मन-भाया था,
कुहू निशा का अन्तिम क्षण
शशि के दर्शन को आया था।।

कान सजे थे मंजरियों से,
निर्मित नूतन बाले से,
बातें करने में हिलते थे,
वे सितार के झाले से।।

कंठ सुसज्जित था चम्पक की
सज्जित सुरभित माला से,
जैसे छप्पय पूर्ण हो गया था
विशुद्ध उल्लाला से।।

कमल - कोष की कसी कंचुकी
काम - कला की कविता थी।
और किंकणी सोनजुही,
कलिकाओं से संवलिता थी ॥

बेला की कलियाँ नूपुर - सी,
इस विवाह की बेला में,
सौरभ का सन्देश दे रही,
हाव भरी रस हेला में ॥

पद में शयन कर रही थी
अरुणिम चित्रित जावक - रेखा,
सभी कलाएँ सहज कर रही
थीं विवाह - विधि का लेखा ॥

शिष्यों ने ऋषिवर गौतम का,
मोहक वेश बनाया था,
उनके जटा - जूट में सुरभित
पुष्प-हार पहनाया था ॥

माथे पर चन्दन की चित्रावलि,
अति शोभा पाती थी,
उनके अधरों पर खिलती—
मुस्कान सभी को भाती थी ॥

उनका हृदय सजा था कितने
श्वेत कमल के हारों से।
सुरभि बसी थी उनमें जैसे
संचित ब्रह्म-विचारों से।।

उत्तरीय था हरित, शेष,
तन का नव वल्कल पीला था,
ब्रह्मचर्य से अति प्रदीप्त तन,
गौरव से गर्वीला था।।

कन्धे से यज्ञोपवीत का
सूत्र ललित लहराया था,
जैसे सामवेद का कोई
सूत्र भटक कर आया था।।

चरणों में जावक की रेखा
ऐसी शोभा पाती थी,
'स्वाहा' को श्री अग्नि देव की
लिखी प्रेम की पाती थी।।

इस विवाह उत्सव का वैभव
मदनोत्सव - सा प्यारा था,
जैसे वेद-ऋचाओं ने ही
मानव धर्म पुकारा था।।

पति-पत्नी के पावनतम
सम्बन्धों की प्यारी अभिलाषा—
आज सफल होने को थी—
विश्वासमयी सुख की आशा ।।

नव लतिका निर्मित मण्डप के,
मध्य-स्थल में थी वेदी,
अग्निदेव ने स्वाहा को,
आने की अनुमति थी दे दी ।।

यज्ञ-स्थल में गौतम-ऋषि के,
साथ अहल्या थी आयी,
शंख-ध्वनि मंगल गीतों के—
साथ वहाँ पर थी छायी ।।

मधुर कंठ से ऋषि-कन्याएँ,
मंगल गायन गाती थीं,
पुष्पों की वर्षा करती थीं,
फिर-फिर आती जाती थीं ।।

ऊँचे आसन पर बैठे थे,
पूज्य प्रजापति विश्वासी,
सुता अहल्या के प्रति उनके
मन में उभरी ममता-सी ।।

"अब तक मेरी सुता अहल्या,
मेरी थी-अपनी ही थी,
मैंने उसके लिए साधना
कितने तप - बल से की थी ।।

पर मैं आज उसे सौपूँगा,
अन्य किसी की सेवा में,
एक नया नद आज मिलेगा,
पुण्यमयी इस रेवा में ।।

ब्रह्म - ज्योति ही प्रतिभासित,
होती है इसके प्राणों में,
सबसे श्रेष्ठ यही थी अब तक
मेरे नव निर्माणों में ।।

कितनी बार तपस्या करते,
इसकी ही सुधि आयी थी,
कभी-कभी मेरे चिन्तन में,
इसकी ही छवि छायी थी ।।

आज तपस्वी गौतम मेरे
इस धन के अधिकारी हैं,
ये विवाह के क्षण सुखकर हैं,
किन्तु पिता पर भारी हैं ।।

प्राण अलग होने पर भी यह
देह पिता की जीती है,
आज पिता ही जान सकेगा,
उस पर क्या-क्या बीती है।।

है सन्तोष अवश्य मुझे
वर है सुपात्र सत्पथगामी,
दोनों का सुखमय जीवन हो,
मेरे प्रभु अन्तर्यामी।।

भले प्रजापति कहो मुझे, पर,
पिता-हृदय भी मेरा है,
कहाँ इसे ले जाऊँ बेटी!
तेरे बिना अँधेरा है।।"

टूटा ध्यान प्रजापति का जब
जय-ध्वनि से मण्डप सारा,
गूँज उठा आगत ऋषियों, मुनियों,
ऋषि - कन्याओं द्वारा।।

वर गौतम के साथ अहल्या,
वधू रूप में आयी थी,
आँखों में लज्जा के भीतर
अश्रु - तरलता छायी थी।।

ऋषि - कन्याएँ रह-रह कर
पुष्पांजलियाँ बरसाती थीं,
गा विवाह के गीत आरती
चारों ओर फिराती थीं ।।

सब संस्कारों को पूरा कर,
दीन-जनों को अन्न दिया,
कन्या-दान प्रजापति ने सब
विधियों से सम्पन्न किया ।।

ऋषियों ने आहुतियाँ देकर
फिर पूजा करवायी थी,
मंत्रों से वर और वधू की
सप्तपदी करवायी थी ।।

ऋषि - कन्याओं ने क्रम-क्रम से
निवछावर का नेग किया,
जिसका जितना प्राप्य भाग था
उतना उसको सहज दिया ।।

पुनः प्रजापति ने उठकर—
विश्वावसु के प्रति मन्त्र कहा—
"मुक्त करो कन्या को जिस पर
नैसर्गिक अधिकार रहा ।।

कन्या के रक्षण के अब तक,
आप रहे उत्तरदायी,
अब इस कन्या ने पत्नी की
नूतन सत्ता है पायी ॥"

यह ध्वनि आयी—अब ऋषि गौतम,
हो संरक्षक स्वामी हैं,
निष्ठापूर्वक आर्य-धर्म के
वे अविचल अनुगामी हैं ॥

गौतम बोले-'पत्नी के प्रति
सदा रहूँगा अनुरागी,
हम दोनों हो साथ रहेंगे—
पाप - पुण्य के सहभागी ॥'

तदुपरान्त कोमल वाणी से,
वधू अहल्या की वाणी,
गूंज उठी—मैं पति के प्रति ही
सदा रहूँगी कल्याणी ॥

ऋषि-पत्नी का धर्म प्रेम से—
प्रति क्षण सदा निबाहूँगी,
पति को मेरे लिए कष्ट हो—
ऐसा कभी न चाहूँगी ॥

असि-धारा की भाँति पतिव्रत—
धर्म ध्येय मेरा होगा,
जीवन भर पति के गौरव का
गान गेय मेरा होगा ।।'

जब विवाह समाप्त हुआ अहा !
प्रभु प्रजापति गौतम के यहाँ,
कुछ दिनों रह आशिष दे गये,
द्रुत विलम्बित हो निज लोक को ।।

□ □

नवम सर्ग

तप

वाणी का शुभ वरदान बना है यह वनान्त
जिसमें विहगों के कूजन से सजता प्रभात,
जैसे कि वेद के एक चरण की ऋचा रहे,
रेखांकित हों जिसमें कितने ही स्वराघात ॥

गिरि-शृङ्ग गगन की गहराई में गुँथे हुए,
ये हैं पृथ्वी के गौरव गर्वित दृढ़ प्रतीक।
भू-मण्डल से नभ-मण्डल अलग न हो जाये,
इसलिए विधाता ने खींची है सुदृढ़ लीक ॥

ये शिला-खण्ड इस भाँति भूमि पर बिखरे हैं,
जैसे ठिठुरा-सा जमा हुआ है अन्धकार।
है बोझ बना उज्ज्वल प्रकाश की छाती पर,
वह बैठा है जैसे कि शाप हो दुर्निवार ॥

दूसरी ओर जो शैल-शिखर का मण्डल है,
उस ओर वायु के पंखों पर उड़ चला शीत।
वह हिम की अचल राशि बनकर आसीन हुआ,
जैसे भविष्य से भूषित हो आकुल अतीत ॥

जब हिम आलोकित होता है नभ-लाली से,
लगता है केसर की बहती है धवल धार।
या भू पर हो स्वर्गीय सृष्टि खिंच गयी नयी,
पर कहाँ तूलिका, और कहाँ वह चित्रकार !!

आगे बढ़कर समतल फैली है हरित भूमि
जैसे कि पृष्ठ पर लिखा सरस सौन्दर्य लेख।
उभरे उभरे अंकुर विराम के चिह्न बने,
मृदु मुकुल-पंक्ति है जैसे नीचे खिंची रेख ॥

है निकट शुद्ध मन-सा मानस विस्तार रुचिर
मुस्कान - रेख की तरह लहरता शुभ्र नीर।
तिरते मराल हैं सन्त-हृदय अपमान रूप,
वह जाता है उपकार सदृश कोमल समीर ॥

आश्रम है मानो पुण्य स्वयं साकार हुआ,
उसके समक्ष वेदी है जिसमें हुआ होम।
उठता है सुरभित धूम-घूम कर लहर सदृश,
कुछ ऊपर जा गति में हो जाता है विलोम ॥

हैं कुसुम कुंज बिखरे जैसे सुख के समूह
हैं भ्रमर गूँजते दिशा बदल गा रहे गान।
है मधुर छन्द सी विहग-वृन्द की गति फिर-फिर,
होता है मानो वेद-विहित नव अनुष्ठान ॥

रवि-कोर उठी प्राची में जैसे ॐ रूप,
किरणें फैलीं जैसे कि आरती गयी घूम।
तरु-तरु की स्वर्णिम शिखा वायु की लहर सहित
आन्दोलित होकर अपने सुख में उठी झूम ।।

है नव प्रकाश जैसे चितवन का दृश्य जगत्,
क्षण में समेटता कण से लेकर महाकार,
इस भाँति प्रकृति का दूर-दूर तक का वैभव,
दिख पड़ा कि जैसे सत्य हुआ है गुणाकार ।।

धूमायित वेदी के समीप गौतम बैठे हैं निर्विकार
सम्पूर्ण ऋचा की भाँति भाल पर दिव्य ज्योति का है प्रसार।
जब कोई अग्नि-शिखा कोने से उठ जाती है अनायास,
तो लगता है कुंभक-समाप्ति पर रेचक की वह रही साँस ।।

सिर पर है शुभ्र जटा जो उनके बाहु-मूल तक रही झूल,
दैवी प्रसाद से सुलझे हैं जिसमें उलझे-से चार फूल।
हैं नेत्र एक-टक देख रहे, यज्ञार्चि जो कि उठ रही शान्त,
प्रतिबिम्ब झलक जाता जब कोई चिनगारी उठती प्रभान्त ।।

नासा-पुट अस्थिर हैं जब सम्मुख धूम-राशि लेती बहाव,
जैसे रस की निष्पत्ति कर रहे संचारी के विपुल भाव।
अधरों पर कोमल हास रुचिर रेखाओं से हो रहा ज्ञात,
जिसमें केवल जग-मंगल है, जीवन में है सुख का प्रभात ।।

वल्कल वसनों से वेष्टित है उनका तेजोमय दृढ़ शरीर
उसमें बह कर जो धन्य हो गया वह है साँसों का समीर।
जब ध्यानावस्थित रहें, आत्म-निग्रह से स्थिर हो नियम-धर्म,
इसलिए बिछा है आसन पर कस्तूरी मृग का रूचिर चर्म ।।

उनके समीप ही देवि अहल्या शोभित हैं ले मौन भाव,
उनकी सस्मित श्री से मानो है दीप्त तपोवन का प्रभाव।
ऋषि गौतम यदि हैं अग्नि-रूप, तो स्वाहा-सी उनके समीप,
हैं देवि अहल्या जिनके उर में पातिव्रत का है प्रदीप ।।

उनकी लहराती केश-राशि है कटि-प्रदेश को रही चूम,
जैसे कि वेद की सघन संहिता अर्थ सहित है रही घूम।
है चन्द्र-पटल-सा भाल, लगी केसर की बिन्दी कलित कान्त,
है क्षितिज रेख-सी केश-राशि दो भागों में बँट गयी शान्त ।।

हैं नेत्र शरद-सरसिज-से जो शीतलता का करते प्रसार,
नासिका-रन्ध्र विहसित जैसे जग-मंगल के हैं दिव्य द्वार।
अधरों की पतली रेख उषा की प्रथम रश्मि की रेख एक,
वह है जीवन की मधुर रागिनी के अन्तर की एक टेक ।।

है आत्म-तोष-सा कंठ और है आत्म-काम-सा भरा वक्ष,
कटि की वर्तुल रेखा में धनु की नमित कोटियाँ लक्ष-लक्ष।
हैं जानु सुशोभित आसन पर चरणों की शोभा है अनूप,
जैसे कुवलय ने वलय सदृश पा लिया मलय का झुका रूप ।।

वल्कल-पट से शोभित है तन मानों कि धर्म पर सजी नीति ,
या करता है श्रृङ्गार शांत को मंडित ले रसमयी रीति ।
सारे शरीर पर यज्ञ-धूम की राशि बिखरती इस प्रकार ,
जैसे झीना नीहार बने साकार और फिर निराकार ।।

होता रहता है यज्ञ—याग में पति - पत्नी का नित्य कार्य ,
जो इन्द्र देव को छोड़ सभी देवों को होता शिरोधार्य ।।

समोद होता इस भाँति यज्ञ था ,
कभी अहल्या निज पुत्र गोद ले ।
महर्षि के पावन मन्त्र-पाठ में ,
प्रसन्नता से स्वर साधती थी ।।

□ □

इन्द्र

अर्ध रात्रि—तारक समूह नील व्योम में,
विह्वल प्रकाश में रहस्यमय हो रहा।
जैसे ज्योति का अभाव देख खद्योत सब,
सिसक सिसक ज्योति-बिन्दु में विकल हैं।।

वायु स्थिर जैसे किसी लाड़ले को माता ने,
रोक दिया—लाल! तुम बाहर न खेलना।
और वह साँस रोक पत्तों की ओट लिये,
छिप गया, देखें, उसे कौन खोज पाता है।।

पक्षी सब सो गये हैं निज निज नीड़ों में,
जैसे भाग्य सोता है भविष्य के अँधेरे में।
अध-सोया पक्षी चौंक, चीख भर लेता है,
जैसे किसी क्रूर ने ही चीर दिया शून्य को।।

तभी उस रात्रि मध्य किसी दिशा-कोण से
अरुणशिखा की ध्वनि सुन पड़ी कानों में।
गौतम महर्षि जागे, क्या प्रभात हो गया?
उठ कर बोले। "प्रिये, ब्राह्म वेला आ गयी।।
(जागो, प्रिये, जागो, हे अहल्ये, ब्राह्म बेला में—
बोल उठा ताम्रचूड, रात्रि गत हो गयी।)"

पास ही की शैया पर शयित अहल्या थी,
वह उठी, उसने प्रणाम किया ऋषि को।
वातायन-द्वार से विलोक नभ और बोली—
देव! रात्रि शेष है, आकाश अभी श्याम है।।

अभी ये दो तारे इसी कोण तक आये हैं,
भ्रम हुआ होगा या तो कोई स्वप्न देखा है।
ऋषि बोले—"नहीं देवि, भ्रम कैसे मानूँ मैं?
अरुणशिखा ने ध्वनि तीन तीन बार की।।

शीघ्र मुझे गंगा-स्नान हेतु जाना चाहिए,
कल ही तो ज्योतिष की गणना जो मैंने की।
देखा था अनिष्टकारी दुष्ट ग्रह वक्री हो
अनुचित रूप से जुड़े हैं भाग्य-भाव में।।

उन्हें मंत्रों द्वारा मुझे शान्त कर देना है,
इसलिए शीघ्र ब्राह्म-वेला में स्नान कर—
यदि शान्ति-पाठ करूँ पूजन के साथ ही,
हानि नहीं होगी कुछ, ऐसा सोचता हूँ मैं।।

ऐसे कुग्रहों का योग हो रहा है आज से,
शंका-ग्रस्त हो रहा है भाग्य हम दोनों का।
मैं तो यह पूजन करूँगा शान्ति हेतु ही
यदि तुम साथ चलो और भी कुशल है।।"

विनय अहल्या ने की, बोली वह धीरे से—
"देव ! जैसी आज्ञा दें, परन्तु शतानन्द को—
रात भर नींद नहीं आयी, अभी सोया है।
फिर कहीं जागा, तब कौन उसे देखेगा ?"

गौतम के ओठों पर हलकी मुस्कान थी।
बोले—"अच्छी बात। माँ की ममता के आगे क्या
मंत्र कोई चलता है ? मात्र चलता हूँ मैं।
तुम रहो पास शिशु प्यारे शतानन्द के।।"

ऐसा कह ऋषि उठे मंत्र जपते हुए
मृग-चर्म और पूजा-सामग्री समस्त ली।
वल्कल वस्त्र, कुश, आसन, अर्ध्य-पात्र भी
कुछ कंद-मूल-फल, कमण्डल छोटा-सा।।

उठा लिया और फिर एक दृष्टि ममता की
डाली शतानन्द पर जो कि अभी सोया था।
धीरे धीरे मन्त्र-पाठ किया द्वार खोल के
भागीरथी ओर शीघ्र गति से चले गये।।

ज्योतिष में जैसे विंशोत्तरी दशा के मध्य
रवि से आरम्भ कर शुक्र पर्यन्त तक।
पथ पार करते वे गंगा के तट तक
ग्रह-शान्ति हेतु गृह छोड़ के चले गये।।

इस ओर नीरव कुटी की घनी छाया में
देवराज इन्द्र चोर बन, छिपा बैठा है।
ऐसा लगता है जैसे घने अन्धकार में
भीषण भुजंग भग्न भाग्य भरा आया है।।

फन फैला हुआ है अति तीव्र दंशन को
साँस नहीं लेता किन्तु छोड़ता फूत्कार है,
वायु की लहर काँप उठती है पास की,
और अनिमेष घूरता है अन्धकार में।।

देवराज बढ़ता है बड़ी सावधानी से
किसी ओर से तो कोई शब्द नहीं हो रहा ?
झुक कर देखा, कुटी-द्वार बन्द तो नहीं ?
अभी ऋषि गौतम तो खोल के गये ही हैं।।

जल रही दीप-शिखा मन्द एक कोने में
पल्लवों की शैया पर मृग-चर्म है बिछा।
उस पर अहल्या सौम्य मुद्रा में लेटी है,
जैसे बादलों के बीच सजी चन्द्र-लेखा है।।

झीने से प्रकाश में भी स्पष्ट दृश्यमान है,
वल्कल का वस्त्र खिसका है वक्ष-भाग से।
लगता है कंचन शिखर है शिवारि का,
छोड़ कर संचारियों को निखरा शृंगार है।।

हाय रे, विधाता, यह भोग की विभूति है।
और स्वयं देवराज वंचित है उससे?
मात्र एक गौतम ही उसका विलासी है?
तब मुझे गौतम ही बन जाना चाहिए ॥

बनता हूँ गौतम ही अपनी मैं माया से।
और क्षण मात्र में ही देवराज इन्द्र ने
ऋषिराज गौतम का रूप रख भी लिया
मायावी इन्द्र के लिए तो सब संभव था।

जटाजूट शीश पर, माथे पर रेखा है।
वल्कल के वस्त्र से सुसज्जित शरीर है।
पैरों में पादुकाएँ, हाथ में कमंडल है,
मानो ऋषि गौतम एक से हो गये हैं दो ॥

एकाकिनि अहल्या जैसे तम-विस्तार में
दीप-शिखा सोई हुई निश्चल प्रशान्त है।
साँस का प्रवाह नासिका से इस भाँति है
जैसे स्वर से विहीन कोई मन्द राग हो ॥

फिर फिर वक्ष उठता है मन्द गति से
साथ साथ दृप्त दृष्टि दुष्ट देवराज की।
उठती है, गिरती है, उठती है, गिरती।
(रूप-शैल पर दृष्टि चढ़ती, उतरती।)

पास ही की शैया पर शतानन्द सोया है
कहीं वह जाग उठा तो ? तो बड़ा विघ्न है।
उसको सुला दूँ और गहरी-सी निद्रा में
मेरी यह माया किस दिन काम आयेगी ?

ऐसा सोच उसने बढ़ाया हाथ अपना
और शतानन्द को सुलाया घोर निद्रा में।
अब निश्चिन्त हो कर देवराज इन्द्र ने
एक साँस गहरी ली देख कर अहल्या को ॥

सुनसान आश्रम के दूसरे ही कोने से
झनकार झींगुरों की फिर फिर होती थी।
जैसे सब मिल कर निज तीव्र स्वर से
देवराज इन्द्र को चेतावनी-सी देते थे।

सावधान इन्द्र, यह पुण्य सरोवर है
वासना का विष घोलना महान् पाप है।
किन्तु क्या चेतावनी सुनी किसी विलासी ने ?
वह तो निर्लज्जता की हँसी हँस देता है।

देवराज आगे बढ़ा—आगे बढ़ा और भी
जैसे शनि चित्रा में प्रवेश कर जाता है।
पहुँचा कुटी में, ज्योति सब ओर फैली थी
सामने अहल्या जैसे दामिनी की धारा है ॥

स्तब्ध रह गया—आह, यह रूप-राशि है
धिक् रे विधाता, तूने एक मीन मोहिनी
कैसे डाल दी है एक शुष्क सरोवर में ?
बरसा है सोमरस जैसे मरुस्थल में ।।

केसर तिलक खींचा जहाँ शुष्क भाल है ?
रसमय काव्य और दग्धाक्षर आदि में ।
शिशिर के बीच क्यों वसन्त-श्री डाल दी ?
जैसे मगहर में प्रयाग का माहात्म्य हो ।।

शोभा—सिन्धु बीच डूबते-उतराते हुए
इन्द्र और आगे बढ़ा, देह इन्द्र-धनु-सी—
वज्र-पाणि उर बीच धँस गयी वज्र-सी
क्षण में सिहर उठा, जड़वत् हो गया ।।

नाना भाँति के विचार आते रहे मन में ।
सोचता है—कैसे बोल पाऊँगा अहल्या से ?
इसके समक्ष यदि कंठ रुद्ध हो गया !
या कि कहने की बात अनकही हो गयी ?

जब प्रजापति ने रखा था प्रस्ताव यह
मेरे पास या कि पास ऋषिवर गौतम के—
जायेगी अहल्या ? तब स्वयं अहल्या ने ही
किन तीव्र शब्दों से मुझे ही तो धिक्कारा था ।।

क्या कुछ अन्तर हुआ होगा मनोभावों में ?
अब वधू से तो वह बन गयी जाया है।
जाग रही है या वह निद्रा में ही लीन है ?
यदि सो रही है, किस भाँति से जगाऊँगा ?

यह तो सही है, मेरा गौतम का रूप है।
किन्तु यदि पूछ बैठी, क्यो मैं लौट आया हूँ ?
अभी अभी तो गया था प्रातः स्नान के लिए
क्या कहूँगा ? और यदि जान लिया उसने ?

स्वर्ग का निवासी शचीपति देवराज हूँ।
ऐसे कु-समय में आया हूँ मैं क्यों स्वर्ग से ?
और यदि आने का ही कारण पूछ लिया ?
फिर क्या कहूँ ? क्या कहूँगा कि शची रूठी है ?

उसके मनाने का उपाय नहीं जानता,
बता मुझे दीजिए, मैं इसी हेतु आया हूँ।
अथवा क्या ऐसा भी मैं कह दूँ अहल्या से
शची से निराश हो के एक मात्र तुम से--

प्रेम-भिक्षा पाने हेतु यहाँ चला आया हूँ।
कृपया कृतार्थ करो दुखी इस प्रेमी को।
ऐसा कहने पर जो शाप मुझे दे दिया ?
कैसे फिर स्वर्ग में मैं मुख दिखलाऊँगा ?

देवताओं बीच क्या न लाँछित हो जाऊँगा ?
लाँछित-हाँ, लाँछित भी ! उसकी क्या चिन्ता है ?
लाँछन तो थोड़े दिनों बाद भूल जाता है ?
और कुछ वहे—यह साहस है किसका ?

पर इस क्षण कैसे रोकूँ मन अपना ?
जब कि सामने ही रूप-सिन्धु लहराता है।
और मैं न जाने प्यासा कितने युगों से हूँ।
हाय, इस रूपसी में कैसी दिव्य आभा है।।

जान नहीं पड़ता कि तुलना में इसकी
विश्व में किसी की ओर देख भी सकूँगा मैं।
जैसे सिन्धु-मन्थन से चारु चन्द्र की छटा
अभी अभी निकली है किरणें बिखेरती।।

ये भुजाएँ दिव्य जैसे अभ्र लघु रेखाएँ
बाल सूर्य रश्मियों से रंजित हैं हो उठीं।
निद्रित नयन-रेखा कहीं बिखरे नहीं
ऊपर लगा दी रोक कमनीय भौहों की।।

साँस-गति से जो उर आन्दोलित होता है
जैसे - रूप-सिन्धु में तरंगें उठ जाती है।
मेरे उर-सिन्धु में भी ज्वार उठ आया है
एक क्षण भी तो अब रुक न सकूँगा मैं।।"

यह सुरेश्वर की चिर लालसा
मथित जो मन को कर है रही।
वह भले रुक भी न सके अभी
पर विलम्बित है अभिशाप से।।

□ □

एकादश सर्ग

अहल्या

ऋषिवर गौतम तो प्रातः-स्नान के लिए
अपनी कुटी का द्वार खोल कर थे गये।
सोयी थी अहल्या, द्वार बन्द कौन करता?
इसीलिए देवराज था प्रसन्न मन में॥

बीते क्षण! आश्रम का द्वार हिला धीरे से,
देवराज ने किया प्रवेश एक कोने से।
काष्ठ-दण्ड जो टिका था, ठोकर लगी उसे,
गिर पड़ा भूमि पर शब्द करते हुए॥

चौंक कर शीघ्र ही अहल्या उठी शैया से
यह कैसा शब्द है क्या ऋषि लौट आये हैं?
कुछ क्षण पूर्व ही तो स्नान-हेतु थे गये,
कैसे आ गये वे शीघ्र, पूजा क्या न हो सकी?

पूछा—"देव! भूल गये आप कोई वस्तु क्या?
कैसे शीघ्र लौट आये? बोलते हैं क्यों नहीं?
ऋषिवेशी इन्द्र पहले तो कुछ सहमा
फिर कुछ साहस-सा भर कर स्वर में॥

बोला–"देवि ! क्या कहूँ, जो शीघ्र लौट आया हूँ ,
बात कुछ है कि कह....कह नहीं सकता !
बात कुछ ऐसी है कि वृक्षों पर पक्षियों को ,
पास-पास सोते कुछ इस भाँति देखा है ॥

काम....काम वासना-सी जाग उठी सहसा ,"
चीख-सी अहल्या उठी बात यह सुनके ।
बोली—"काम वासना की बात ब्राह्म वेला में ?"
इन्द्र बोला—"हानि क्या है रात्रि अभी शेष है ॥

देखो, खग वृन्द भी तो अब तक सोया है ,
चंचल हुई हैं मेरे मन की प्रवृत्तियाँ ।
इसीलिए पूजा छोड़ पास चला आया हूँ ,"
खीझे हुए स्वर में अहल्या झुँझला उठी ॥

"पाप शान्त हो, हे देव ! आप कैसे हो गये ?
बीते वर्ष, मास कितने ही इस आश्रम में ,
ऐसी बात मैंने कभी आपसे सुनी नहीं ,
आप तो हैं आत्मत्यागी, संयमी, सत्यव्रती ॥

नीति-पथ से न डिगे, आज क्षुद्र पक्षियों की—
शयन-दशाएँ देख, पूजा तक छोड़ दी ?
और अविवेकी, मोह-ग्रसित विमूढ़ हो ,
लज्जा छोड़ मेरे पास दौड़े चले आये हैं ?"

बोला ऋषिवेशी इन्द्र —"देवि ! शंकित न हों ,
जीव-धारियों में काम-वासना समान है ,
जानो मुझे मैं भी एक पक्षी प्रेम-पक्ष का ,
"पक्षी प्रेम पक्ष" "में अनेक अर्थ व्याप्त है ।।"

ऐसा कह "हो" "हो" कर अट्टहास स्वर में ,
हँस पड़ा इन्द्र और बढ़ा कुछ आगे भी ।
तत्क्षण अहल्या कुछ पीछे हटी भय से ,
"अट्टहास" ऐसा अट्टहास कभी ऋषि को ।।

करते सुना ही नहीं— स्वप्न में सुना नहीं ,
किस भाँति ऋषिदेव प्रिय पति मेरे हैं ?
किन्तु वेश वही, बात वही, वही चाल है ,
फिर कैसे करते हैं वासना की बातें ये ?

और ऐसा अट्टहास ? यह क्या रहस्य है ?
ऐसे घोष स्वर से वे हँसते कभी नहीं ।
मैं तो जानती हूँ एक-एक भाव-भंगिमा
अपने प्रिव स्वामी की क्या पत्नी हो न जानूँगी ?"

इन्द्र कुछ आगे बढ़ बोला मृदु स्वर से
"देवि ! सोचने लगीं क्या इस मधु बेला में ?
आतुर हूँ मैं तुम्हारा स्पर्श पाने के लिए ,"
कुपित अहल्या तब बोली दृढ़ स्वर में ।।

"आप मेरे पति हैं क्या ? सच-सच बोलिए ,
जिस भाँति से वे हँसते हैं, जानती हूँ मैं।
अपने पतिदेव की मैं अर्द्धाङ्गिनी ही हूँ ,
कैसी भी परिस्थिति हो, उन्हें जान लूंगी मैं ।।

आप कौन हैं जो वेश रख कर उनका
क्रूर परिहास करने के लिए आए हैं ?
इस ब्राह्म बेला मध्य वासना की बातों से
आप अपमान स्वयं करते हैं अपना ।।

उनका भी वेश आप लांछित हैं करते
आप छद्मवेशी बन ठग सकते नहीं।
बोलिए कि आप कौन ? किस हेतु आये हैं ?
और ऐसे क्षण जब मैं यहाँ अकेली हूँ ?

घोर वासना की बातें एक ऋषि-पत्नी से ,
करते हैं, लज्जा लेश आपको न आती है ?
ऐसा शाप दूँगी जो सँभाला नहीं जायगा ,"
वज्रपाणि इन्द्र तृण के समान हो गया ।।

बोला—"देवि ! आप मुझे कृपया क्षमा करें ,
आपकी ही रूप-ज्वाला में जला मैं इन्द्र हूँ।"
झटका-सा एक लगा गौतमी अहल्या को ,
बोल उठी-"ओह ! आप देवराज इन्द्र हैं ?

मायावी प्रसिद्ध हैं इसीलिए तो आपने
ले लिया सम्पूर्ण वेश मेरे पतिदेव का।
किन्तु ऋषिवाणी और...हास्य नहीं पा सके ।।"
भेद-भरी बात सुन गौतमी अहल्या की
देवराज इन्द्र ने बनायी बात अपनी......।

"देवि ! यह जान लें कि आपके ही प्रेम ने,
विह्वल बना दी मेरी वाणी, इस हेतु मैं—
बोल नहीं पाया किसी भाँति ऋषि-वाणी से,
और ऋषि-जैसा अट्टहास नहीं पा सका ।।"

गौतमी अहल्या बोली पीछे कुछ हट के,
"देवराज इन्द्र ! यदि भूलती नहीं हूँ तो,
पूज्य प्रजापति के समीप तुम आये थे,
जिस क्षण जा रहे थे तप करने को वे ।।

तुम चाहते थे मैं रहूँ तुम्हारे स्वर्ग में,
किन्तु मैंने तभी तुम्हें किया अस्वीकार था।
यह भी कहा था..........दुहराऊँ उसे फिर क्या ?
भूलने की बात किसी भाँति वह है नहीं।

"आप अब जाएँ बचाएँ—जो प्रतिष्ठा है बची,
आपकी अपलक प्रतीक्षा, कर रही होगी शची ।।"

इन्द्र ने विनीत भाव से कहा—"सुहासिनी !'
आप उमा और लक्ष्मी से भी श्रेष्ठतर हैं।
आप मुझे प्रेम का प्रशस्त वरदान दें,
प्रेम का पुजारी चिरकाल से हूँ आपका ॥"

बात सुनते ही चढ़ी भृकुटी अहल्या की
क्रोध अग्नि-रेख बन जल उठा आँखों में
बोली असि-धार जैसे पैने कटु शब्दों में—
"सावधान देवराज ! आगे मत बढ़िए ॥

आप देवराज हैं तो देवराज जैसे हों,
शीघ्र इस आश्रम से आप चले जाइए।
अन्यथा समस्त स्वर्ग लांछित हो जायेगा,
पास है अतिथि-शाला वहाँ आप ठहरें ॥

आवेंगे महर्षि तब, वे स्वयं ही देखेंगे
आप से अतिथियों से कैसा व्यवहार हो।
मात्र यह जान लें कि आर्य-नारी के समक्ष,
शिष्टता से कैसे वार्तालाप किया जाता है, ॥"

कुछ भी प्रभाव धृष्ट इन्द्र पर था नहीं,
वह उसी भाव-भंगिमा से बढ़ा आगे ही,
बोला—"देवि ! मंजु उपदेश सुना आपका,
मिष्ट वाणी ऐसी थी कि अच्छा लगा सुनना ॥

किन्तु बात दूसरी है जिस हेतु आया हूँ,
आपकी अनूप शोभा देख मेरी कामना—
कामना यही थी आप मेरी अंकशायिनी—
बन जावें। थी प्रतीक्षा मुझे ऐसे क्षण की ॥

आप हों अकेली और मैं निकट हो सकूँ,
वर्षों को प्रतीक्षा बाद आज यह वेला थी।
चन्द्र से कहा था—वह ठीक मध्यरात्रि में,
कुक्कुट बन बाँग दे, जिससे महर्षि को—

भान हो प्रभात का, वे शीघ्र ही स्नान हेतु,
आश्रम से बाहर हों—आप हों एकाकिनी।
उसी क्षण मैं प्रवेश पा लूँ इस कक्ष में,
वेश सावधानी से बना लिया था ऋषि का ॥

किन्तु स्वर-वाणी किसी भाँति नहीं पा सका,
व्यर्थ हँसा अपनी ही बात पर हाय ! मैं।
यही मेरी भूल आपको सन्देह दे गयी।
जिस क्षण आपको हे देवि ! मैंने देखा है ॥

जलता रहा हूँ आपकी ही रूप-ज्वाला में,
आप से प्रणय-भिक्षा माँगता हूँ देवि ! हे,
एक वृद्ध पति से तो श्रेष्ठ युवा प्रेमी है।
इस बात से क्या कुतूहल नहीं होता है?

मुझको कृतार्थ करें, भिक्षुक हूँ आपका
रात्रि की निस्तब्धता में कोई नहीं देखता।
मात्र तारे देखते हैं किन्तु सभी मौन हैं।''
देवराज कितनी ही बातें कहता गया।

किन्तु ध्यान में अहल्या लीन रही पति के,
उसने तो जैसे एक शब्द भी सुना नहीं।
आँखें जब खोलीं–देखा–इन्द्र सामने ही है,
चाहे जब स्पर्श करे, गौतमी अहल्या का।।

क्षण मात्र में अहल्या शीघ्र हटी पीछे को
अग्नि के स्फुलिंग लोचनों से झरने लगे,
धिक् ओ सुरेन्द्र! तुझे लज्जा नहीं आयी जो,
चोरी से पतिव्रता के सत्य से है खेलता?

देवगण क्या कहेंगे, शची मर जायेगी,
ऐसे सुरपति से तो स्वर्ग भी लजायेगा।
शीघ्र लौट जा तू! यह पाप-पथ छोड़ दे,
मेरा शाप स्वर्ग को भी नरक न कर दे।।''

इन्द्र तो निर्लज्ज, फिर बोला "मुझे चिन्ता क्या!
मैं तो जिस कामना से यहाँ तक आया हूँ।
पूरी वह होगी अब,'' ऐसा कह उसने
आलिंगन - हेतु भुजा अपनी बढ़ा ही दी।।

आह ! यह क्या हुआ कि एक क्षण भर में,
जैसे ही अहल्या का शरीर छुआ उसने।
उसको लगा कि एक प्रज्ज्वलित ज्वाला से
हाथ जलने लगा है उस वज्रपाणि का॥

देखा उसने कि अग्नि-मूर्ति-सी अहल्या है
जैसे ध्वान्त ध्वंसक धरा का धूमकेतु हो।
जो कि धूम-धारा धरे धू-धू कर धधके,
और धीरे धीरे धरा ध्वस्त होके धसके॥

घोर घने मण्डल से घन घमंड घुमड़े,
कण-कण कम्पित कराल क्रूर करका,
तड़पी अहल्या उसी भाँति वज्र वाणी से,
"दुष्ट दुराचारी दंभी दुर्मति ! तू दूर हो॥

तेरा यह साहस कि एक ऋषि-पत्नी को,
एक अप्सरा की भाँति समझे विलासिनी ?
भेद क्या नहीं है गंगा और कर्मनाशा में ?
सभी नारियाँ को एक जैसी मानता है तू ?

भोगवती भामिनी के भाग्य का विधाता है।
कैसे जानें ऋषि-पत्नियों की भव्य भावना ?
तुझे शाप देती हूँ कि इन्द्रियों पर बैठ के,
एक क्षण भी न शान्ति प्राप्त कर पायेगा॥

जब किसी सुन्दरी को देख लेगा चोरी से
कुत्सित प्रस्ताव करने में नहीं चूकेगा।
तभी श्वान युवा जैसा दुष्ट ! दण्ड पायेगा,
लांछित सदैव होगा मेरे इस शाप से ।।

देवराज काँप उठा—विह्वल स्वर से,
बोल उठा—"देवि क्षमा ! देवि ! क्षमा कर दें,"
जब वह लज्जित हो प्रार्थना था करता।
तभी ऋषि गौतम की पद-ध्वनि पास थी ।।

चारों ओर थी अशान्ति, तुमुल सुनायी पड़ा
उन्हें लगा जैसे कोई दुर्घटना है घटी।
क्या अनिष्टकारी ग्रह शान्त नहीं हो सके ?
इन्द्र भाग भी न सका, ठोकर उसे लगी ।।

सामने ही गौतम के वह गिरा भय से
वैसे ही अहल्या शीघ्रता से पास आ गयी।
क्रोध-भरे शब्दों में उठी थीं चिनगारियाँ
"देखिए तो प्रभु ! यह इन्द्र महा मायावी—

आपका ही वेश रख आया मुझे छलने,
मात्र तन स्पर्श किया मेरा काम-भाव से,
इससे शरीर मेरा हो गया पाषाण-सा,
अब यह आपकी क्या, सेवा-योग्य है रहा ?

यह देह, देह नहीं मात्र पाषाण है
जीवन का मोह अब लेश मात्र है नहीं।
चाहती हूँ इसी क्षण देह नष्ट कर दूँ,
शीघ्र ही चिता में भस्म इसको करूँगी मैं।

एक क्षण में ही ऋषि रह गये स्तब्ध-से
सामने ही देखा इन्द्र अपने ही रूप में।
और सुना पत्नी-अपमान उस दुष्ट से
अग्नि-ज्वाला-सा प्रचण्ड शाप यह निकला—

"मम रूपं समस्थाय कृतवानसि दुर्मते!
अकर्तव्यमिदं तस्मात् विफलस्त्वं भविष्यसि ।।"

"दुर्मते! तू मेरा वेश रख कर आया है,
हो जा रे नपुंसक तू शीघ्र ही 'विफल' हो,
तेरी क्षुद्र वासना का मात्र यही दण्ड है,
देह पर नारी - चिह्न अंकित सहस्त्र हों ।।

तत्क्षण ही देवराज "फलहीन" हो गया,
सारी देह नारी-चिह्नों से कुरूप हो गयी,
हाथों से छिपाये मुख अति दीन भाव से
देवराज दुर्दिन की भाँति अस्त हो गया ।।

गौतम ने देखा फिर पावन अहल्या को,
बोले—"प्रिये, मेरी प्रिये! क्रोध अब शान्त हो!
मैंने दे दिया है दण्ड पापी दुराचारी को,
साहस न होगा कभी अब उस दुष्ट को—

किसी सती नारी पर डाल सके दृष्टि भी,
और तुम अहल्ये प्रिये ! कितनी धन्य हो !
अपने समस्त रूप यौवन से इन्द्र भी,
किसी भाँति भी तुम्हारी "मति" नहीं पा सका ।।

ऋषि-नारियों के देवि ! ऐसे ही चरित्र हैं,
गाथा इन नरियों की नित्य गायी जायगी ।"
द्रवित अहल्या बोली "देव ! यह ठीक है,
किन्तु यह कैसे भूल जाऊँ दुष्ट इन्द्र ने—

मेरी देह का स्पर्श किया है काम वृत्ति से,
तो क्या यह देह अपवित्र नहीं हो गयी ?
पतित, पाषाण - सी इसे हूँ देव ! मानती
निश्चय करूँगी नष्ट देह अग्नि-ज्वाला में ।।"

गौतम महर्षि बोले—"देवि ! जानता हूँ मैं
तुम पातिव्रत द्वारा परम पुनीता हो ।
व्यर्थ कहती हो देह हुई पाषाण-सी,
क्यों करती हो इसे नष्ट अग्नि-ज्वाला में ?

कल्पलता जैसी यह पुत्र-दायिनी भी है
कितना चकित यह पुत्र शतानन्द है !
जाग उठा है जो तीव्र स्वर-संघात से
एक-टक देखता तुम्हारी ओर भय से ।।

इसको सँभालना भी तो तुम्हारा धर्म है,
इन्द्र-स्पर्श से जो हुई ग्लानि, व्यर्थ शंका है।
किन्तु याद तो है तुम्हें तप ही विधेय है,
तप से ही अन्त होगा मानसिक ग्लानि का।।

और सुनो—शीघ्र रघुवंश के कुमार दो
रामचन्द्र (नाम से रोमाँच ऋषि को हुआ)
और वीर लक्ष्मण निशाचरों को मार के,
विश्वामित्र गुरु समेत हैं यहाँ आ रहे।।

तुम जिस देह को पाषाण-सी हो मानती,
प्रभु पद-पद्म छू के एक क्षण मात्र में—
वह गंगा - जल - सी पवित्र बन जायेगी,
और प्रभु-दर्शन से धन्य बन जाओगी।।

मैंने अति क्रोध से जो शाप दिया इन्द्र को
उससे हुई है हानि मेरे आत्म-सत्व की
उसकी करूँगा पूर्ति शीघ्र तप करके,
हिम-गिरि के प्रशान्त अंचल में जाऊँगा।।

जब श्री राम यहाँ गुरु समेत आवेंगे,
मैं भी दर्शनों के हेतु यहाँ चला आऊँगा।
और तुम देवि! यहाँ तपोलीन रहना
मन का विषाद दूर होगा अति शीघ्र ही।।

अब यह आश्रम रहेगा जन-शून्य ही
दुष्टकामी, इन्द्र से अपावन जो हो गया।
पशु-पक्षी आदि भी यहाँ से चले जायेंगे
किन्तु एक मात्र तुम्हें होगा यहाँ रहना ।।"

विनत अहल्या बोली--"देव ! दया करके,
मेरे साथ आप भी क्या रह सकते नहीं ?
आप भी तपस्या करें निश्चल भाव से
सत्व भाव-पूर्ति यहाँ होगी अल्प काल में ।।

आपकी पुनीत सेवा करती रहूँगी मैं,
दर्शन करूँगी और तपोव्रत साधूँगी।
देखूँगी कि आपकी तपस्या यथा विधि है।'
आपकी तपस्या से मिलेगी मुझे प्रेरणा ।।"

अति शान्त भाव से महर्षि ने सप्रेम कहा—
'नहीं देवि ! तप तो एकान्त में ही होता है,
एक बात और सुनो—सुत शतानन्द को
साथ रखने में होगी हानि तपोव्रत की ।।

चाहे कितनी ही वृत्ति हो निसंग सत्व में
ममता की श्रृङ्खलाएँ मन बाँध लेती हैं।
जब तक हमारे व्रत-पूर्ण होंगे नहीं—
तब तक रहेगा लाल श्रेष्ठ ऋषि-कुल में ।।

साँस एक गहरी ली दुःखिनी अहल्या ने
हा ! शतानन्द मेरा पास भी रहेगा नहीं ?
एक दुखी जननी के पीड़ित हृदय को
पुत्र का वियोग क्या न शाप के समान है ?

देते हुए सान्त्वना श्री गौतम महर्षि बोले—
' शान्त देवि ! तुम जैसी सत्यव्रती माता को
त्याग में ही भोग-भावना की पूर्ति चाहिये ।
जब ऋषि कुल में बनेगा पुत्र ऋषि सा—

तुम्हें क्या न गर्व होगा ऋषि-माता होने का ?''
'स्वस्ति' कह ऋषिवर चल पड़े शीघ्र ही
जैसे भाग्य मानव को छोड़ चला जाता है,
ऋषिहीन आश्रम प्रकाश से विहीन था ।।

जैसे अंक हटे और शून्य बिना मूल्य हो,
मात्र दुःखिनी अहल्या बैठी ही रह गयी,
जैसे आग बुझने पर शेष रही भस्म हो,
देखा अब अहल्या ने चारों ओर शून्य है ।।

एक मात्र आश्रम में वह मौन बैठी है,
सोचती है—प्रभु राम के पदारविन्द ही,
मेरी ग्लानि दूर करने को यहाँ आवेंगे
मेरी यह देह जो पाषाण जैसी हो गयी ।।

देह यह देह नहीं मात्र पाषाण है,
उसे शुद्ध करने की करुणा करेंगे वे,
मेरे प्रभु राम! तुम आओ अब शीघ्र ही,
राम, राम, राम इसी नाम का सहारा है।।

नभ श्वेत हो गया था, उषा देवि पूर्व में,
भाग्य का विधान देख विस्मित-सी हो गयी,
नव रश्मि से उन्होंने तापसी अहल्या को,
धैर्य का अमोध वरदान मानों दे दिया।।

कैसी कैसी विषम घटना भाग्य का भोग लाती,
संघर्षों में स्वयं ऋषि की पत्नियाँ दुःख पातों।
पाती हैं वे विजय अपने सत्य संकल्प द्वारा,
मन्दाक्रांता सदृश फिर भी दुःखिनी थी अहल्या।।

□ □

द्वादश सर्ग

उद्धार

है धन्य भूमि, है धन्य काल
'है धन्य धन्य उपवन प्रशान्त।
हैं धन्य यहाँ के लता-पुष्प
है धन्य यहाँ की प्रकृति शान्त।
तुम धन्य अहल्या देवि,
धन्य है, धन्य तुम्हारा तप ललाम।
जिस कारण आज यहाँ आयेंगे,
रघुकुल के अभिराम राम॥

यह प्रकृति आज है मुदित
उषा ने बिखराया अरुणिम पराग,
नन्दन कानन की भाँति प्रफुल्लित
लगता है यह वन - विभाग।
स्वागत करने के हेतु सुरभिमय
बहा मन्द शीतल समीर।
सिंच गया पल्लवों में मोती-सा
अर्घ्य हेतु है ओस-नीर॥

कलियाँ उमंग में फूल उठीं हैं
सजा सजा कर विविध रंग।
जिससे देखें वह रूप जिसे
पा सके नहीं शत शत अनंग।
वन की वल्लरियाँ लरज उठीं,
पाने प्रिय प्रभु का पद-पराग।
कितने वर्षों के बाद यहाँ
अभिशप्त समय के जगे भाग॥

उस दूर दिशा में दिव्य दृश्य
दिख पड़ा एक अभिनव अनूप।
इन नेत्रों का ही प्रथम भाग्य है
देखेंगे यह दिव्य रूप।
श्री विश्वामित्र महामुनि आगे,
चलते हैं वन-पथ निहार।
उनके पीछे हैं पुरुषसिंह
दो रघुवंशी कौशल कुमार॥

सम्पन्न करा कर यज्ञ
महामुनि से पाये आयुध अनेक।
मिथिला के पथ पर चले,
देखने जनक राज का यज्ञ एक।
ऐसे चलते थे जैसे रागों
के सरगम पर स्वर-प्रसार।
पग पग पर धरा धन्य है पा कर
उनका कोमल चरण-भार॥

यह भूमि भव्य हो रही, हो गयी
सभी भाँति से आप्त काम।
जो धर्म कर्म के रक्षक बन
आ रहे यहाँ रघुवंश राम।
यह प्रकृति मनोहर बनी, पुरुष का
देख मनोहर भव्य वेष।
नव तीर्थ सदृश बन गया यहाँ का
श्री - विहीन उजड़ा प्रदेश ।।

अब तक तो मरु-सी भूमि रही,
ऊसर नितान्त, कंटकाकीर्ण।
गौतम ऋषि के अति उग्र शाप से
हृदय हुआ जिसका विदीर्ण।
अब निश्चय क्लेश-रहित होगा
यह भाग अधिक उर्वर प्रशान्त।
वह टीस...कसकती हुई वेदना
अब होगी सम्पूर्ण शान्त ।।

हे प्रकृति! सजग हो देख,
दूर से आते हैं रघुवंश वीर,
ऐसा लगता है उनके तन को
छूकर सुरभित है समीर।
तरु-पल्लव हिलहिल कर स्वागत
में बुला रहे हैं उन्हें पास।
विहगों के स्वर में अभिनन्दन-सा
गूँज रहा है स्वर-विलास ।।

वे निकट आ गये, दर्शनीय है
उनकी शोभा का निखार।
जैसे प्रकाश के भीतर से
निकली प्रकाश की धवल धार।
ये रघुकुल भूषण रामचन्द्र,
पीछे लघु भ्राता लखन लाल।
वे चलते हैं इस भाँति समय की
गति हो जाती है निहाल ।।

हाथों में उनके धनुष,,
वद्ध गोधांगुलि में हैं तीक्ष्ण बाण।
पीछे है तरकस कसा हुआ
कटि-तट पर है पैना कृपाण।
है काक-पक्षमय शीश,
पुष्प-मालाएँ जिसमें सजीं कान्त।
तिलकाँकित मस्तक पर जैसे,
विद्युत - रेखा है सौम्य शान्त ।।

है वक्ष-स्तल विस्तीर्ण और
कटि में शोभित है वस्त्र पीत।
सर्पिल रेखा में सजा हुआ है,
तपःपूत यशोपवीत।
मुख पर है हलकी हास्य-रेख
नेत्रों में निर्मल कृपा-दृष्टि।
वे जहाँ देखते हैं, हो जाती
अरुण कमल की विमल वृष्टि ।।

चलते चलते मुनिवर कहते हैं
कितने रोचक उपाख्यान।
विवरण घटनाओं का देते हैं
दिखला कर वे स्थान-स्थान।
आये ऐसे स्थल पर वे
जो निर्जन था शोभा-विहीन।
हो गया समय ही शून्य वहाँ
या प्रकृति हो गयी आत्म-लीन।।

सब खगों, मृगों ने दिया त्याग
हो गया पंगु जैसे समीर।
जैसे आत्मा ही चली गयी
निश्चेष्ट पड़ा है मृत शरीर।
वह आश्रम था सम्पूर्ण नष्ट
एकान्त शून्यता रही चूम।
था यज्ञ-कुण्ड, पर हवन नहीं,
जब अग्नि नहीं तब कहाँ धूम?

श्री राम हो उठे व्यग्र, उन्होंने
पूछा गुरु से कर प्रणाम।
"गुरुवर! कैसा आश्चर्य! प्रकृति ने
लिया यहाँ कैसे विराम?
लगता है, इस वन में प्रशान्त—
होगा कोई आश्रम महान्।
फिर कैसे वह हो गया नष्ट?
कैसे बिगड़ा सारा विधा?

हैं तरु तो हरे-भरे, वल्लरियों
से निर्मित हैं विविध स्थान।
पर ऋषि-मुनि कोई नहीं,
नहीं है वेद-पाठ या साम-गान।
पशु-पक्षी भी हैं छोड़ गये
इस आश्रम का यह पुण्य क्षेत्र।
सूनापन चारों ओर देख
लगता सूने हो गये नेत्र॥"

मुनिवर दो क्षण के लिए हुए
रोमांचित, फिर हो सावधान
बोले—"प्रिय वत्स! अहल्या की
पातिव्रत-गाथा है महान्।
यह एक सती नारी की है,
गौरव गरिमा अतिशय प्रशस्त!
जिसके समक्ष श्री देवराज भी
लाँछित हो कर हुए त्रस्त॥"

"सम्पूर्ण कथा कहिए, गुरुवर!"
श्री राम शीघ्र बोले स-हास।
"हाँ, होती है करतूत नीच,
जिनका होता ऊँचा निवास।"
ऋषि बोले—"राम! सत्य है यह
लोकोक्ति प्रमाणित है प्रसिद्ध।
इसके साक्षी हैं ऋषि अनेक,
देते प्रमाण हैं सभी सिद्ध॥

ऋषि गौतम आश्रम में प्रति दिन
रहते थे नियमित तपोलीन।
उनकी पत्नी सुन्दरी अधिक थीं,
सती अहल्या चिर नवीन।
जब एक रात ऋषि गौतम प्रातः
समझ रात ही स्नान-हेतु।
थे गये तभी ऋषि-वेष बना
पहुँचे सुरेन्द्र रवि-हेतु केतु।।

वे बहुत दिनों से रहे मुग्ध
सौन्दर्य अहल्या का विलोक।
चाहते रहे वासना-पूर्ति, जब
उन्हें न कोई सके रोक।
पर जैसे उसने किया अहल्या
के शरीर का स्पर्श मात्र।
वैसे नारी के सत्य तेज से
उसका जलने लगा गात्र।।

अति क्रुद्ध अहल्या तड़प उठी,
कर इन्द्रदेव का तिरस्कार।
ऋषि गौतम पहुँचे उसी समय
देखा आश्रम का खुला द्वार।
जब इन्द्र भागने लगा अहल्या
तड़प उठी विद्युताकार।
उसने ऋषि गौतम के समक्ष
कह दिया इन्द्र का अनाचार।।

यह कहा कि उसके स्पर्श मात्र से
यह तन—इस तन का सुरूप।
अब तन जैसा ही नहीं रहा
यह हुआ मात्र पाषाण - रूप।
यह योग्य आपके नहीं
करूँगी इसे चिता में भस्म आज।
सम्मुख निर्लज्ज खड़ा है जो
वह अति लम्पट है देवराज।।

ऋषि गौतम तत्क्षण हुए क्रुद्ध
दे दिया इन्द्र को उग्र शाप।
"तू 'निष्फल' हो, तेरे शरीर पर ही
सहस्र हों योनि - छाप।"
फिर देवि अहल्या से बोले
"हे पतिव्रताओं में महान्!
तेरा शरीर है तपः पूत
पावन है गंगा के समान।।

यदि ग्लानि हुई है इन्द्र-स्पर्श से
तो तप से तन करो शुद्ध।
मैं भी अब तप में लीन रहूँगा
क्योंकि इन्द्र पर हुआ क्रुद्ध।
जब इन्द्र यहाँ आया इससे ही
आश्रम भी हो गया भ्रष्ट।
पशु-पक्षी रहित बना इसको मैं
कर दूँगा सम्पूर्ण नष्ट।।"

फिर कहा अहल्या से "तू तप कर
निराहार, कर वायु - पान।
तेरा तप होगा अद्वितीय,
गन्धर्व करेंगे यशोगान।
हाँ, स्मरण रहे यह एक बात
इस भूमि-खंड को कर सनाथ।
आवेंगे प्रभु श्री रामचन्द्र
अपने गुरुवर को लिए साथ।।

प्रभु के चरणों का शुभ स्पर्श
निर्मल कर देगा यह शरीर।
पर यदि थोड़ा-सा हो विलम्ब
तो मत होना मन में अधीर।
श्री राम राम श्री राम राम
हो सदा प्रेम से यही जाप।
फिर कहाँ रहेगा शाप, ताप,
दुख का कलाप या महा पाप ?"

सुन कर बोले श्री राम "अहल्या
के तप का यह अनुष्ठान।
कितना है गौरवपूर्ण और
पातिव्रत का उज्ज्वल प्रमाण !
मेरी इच्छा है, देव ! अहल्या
की यह अनुपम भाव-भक्ति।
उस सत्यवती नारी के तप की,
चल कर देखें महा शक्ति।।"

गुरु बोले "चलिए आश्रम में पर
पथ तरुओं ने लिया घेर।
वर्षों से लता-झाड़ियों ने हैं
दिये बहुत कंटक बिखेर।
"लक्ष्मण! इनसे पथ मुक्त करो;"
"जैसी आज्ञा," कह लखन लाल।
आगे बढ़ आये। सुलझाया
अति शीघ्र घना तरु लता-जाल....

आश्रम था। देखा दृश्य—सामने
एक शिला पर धरे ध्यान
सौभाग्यशालिनी नारी है
जो तप से है देदीप्मान—
है दिव्य रूप ऐसा कि घिरा है
अग्नि-शिखा पर श्वेत धूम।
अथवा शोभित है चन्द्रकला
जिस पर बादल है रहा घूम।।

हो गया बहुत दुर्बल शरीर
पर तेज विकीर्णित है ललाम।
रह रह कर मुख से निकल रहा
अति कोमल स्वर से 'राम-राम'।
इस ध्यानावस्थित नारी से
बोले श्री लक्ष्मण कर प्रणाम।
"हे देवि! जिन्हें जपती हो तुम
सम्मुख हैं वे आनन्द-धाम।।"

तत्क्षण खोले नत नयन
सामने था कितना मोहक स्वरूप !
था शरच्चन्द्र - सा वदन
नीरधर की शोभा तन में अनूप।
नव अम्बुज-से थे नेत्र ललित,
चितवन थी मन को रही जीत।
उन्नत ललाट पर तिलक बाल रवि-
रश्मि सदृश होता प्रतीत॥

करि-कर जैसा भुज-दंड सज रहा-
था उनमें कोदंड बाण।
सुन्दर तन पर पट पीत
चरण-राजीव सुरक्षा के प्रमाण।
प्रमुदित बोले गुरु, "राम—
यही गौतम की पत्नी है पुनीत।
जिसके कठोर तप के समक्ष
ऋषि-तप लघु होता है प्रतीत॥"

श्री राम देखने लगे—अहल्या
रही एकटक है निहार।
थी कृपा-दृष्टि इस ओर
दूसरी ओर बह रही अश्रु-धार।
रोमांचित है सारा शरीर,
मन में है अनुपम प्रेम-भाव।
साँसों की गति है डाल रही,
विचलित शब्दों पर भी प्रभाव॥

सहसा प्रभु को सम्मुख पा कर
हो उठी भावना में विभोर।
कुछ ओंठ हिले, बदली में जैसे
दिखे सूर्य की क्षीण कोर।
"प्रभु आये—प्रभु आ गये...कंठ—
रुँध गया, प्रेम से अति अधीर,
सब शब्द बह गये, आँखों से—
इतनी गति से बह चला नीर ॥

प्रभु श्री-चरणों में प्रणत हो गयी
सती अहल्या इस प्रकार,
जैसे प्रयाग के पावन तट पर,
गंगा की बह गयी धार।
प्रभुवर ने सती अहल्या के
मस्तक पर अपना रखा हाथ,
हो गयी धन्य वह, उठी भक्ति से
पुनः पदों पर झुका माथ ॥

इतने वर्षों की सतत प्रतीक्षा
जो आँखों में रही लीन,
वह प्रभुवर के करुणा-सागर में—
समा गयी बन मुग्ध मीन।
बोली—"प्रभु ! अन्तर्यामी हैं,
मैं कहूँ व्यथा निज किस प्रकार ?
अपने महर्षि की आज्ञा से
कहती हूँ—सुनिये, हे उदार !

मायावी सुरपति ने मेरे
मुनिवर का रख कर छद्म वेश,
एकाकिनि थी, मेरे आश्रम में
किया मलिन मन से प्रवेश।
आदर्श सदा सतियों के थे
मेरे मन में रघुवंश वीर!
वह मायावी था किन्तु स्पर्श—
कर सका मात्र मेरा शरीर।।

पर काम-भाव से छू लेने से
मेरे मन में हुई ग्लानि।
लगता था, तन—तन नहीं उपल है
सत्व भाव की हुई हानि।
कामी का कर छू जाने से
दूषित था मेरा रोम-रोम,
मैं चाह रही थी, चिता जले—
मैं देह उसी में करूँ होम।।

पर मुनिवर ने सन्तोष दिया,
बोले—"तप ही है अनुष्ठान।
मिट जायेगी सब ग्लानि शीघ्र
यदि रखो धारणा सहित ध्यान।।
जो उपल सदृश तन मान रही हो
वह निर्मल होगा सहर्ष,
श्री राम चन्द्र के चरणों से जब
होगा इसका शुभ स्पर्श।।

श्री गुरुवर, श्री लक्ष्मण को भी
करती हूँ मैं प्रभुवर ! प्रणाम ।
आये हैं जिनके साथ आप
हो गयी देव ! मैं आप्त काम ।
मैं छली गई हूँ व्यर्थ हाय !
यह हुआ प्रभो ! कितना अनर्थ ,
झूठी बातों को सत्य मान ,
होंगे अनर्थ के अर्थ, अर्थ ।।

अब, दर्शन मैंने पाये, हैं
प्रभु-पद से पावन है शरीर ,
प्रिय पति का तो आदेश, यही था
रहूँ हृदय में धरे धीर ।"
फिर प्रेम-भाव से किया अहल्या ने
प्रभुवर का चरण स्पर्श ।
प्रभु द्रवित हो उठे, रखा अहल्या
के माथे पर कर स-हर्ष ।।

फिर कहा—कि "तुम हो शुद्ध देवि !
तुमने पातिव्रत का प्रमाण
इस भाँति दिया है जिसके साक्षी
होंगे सब वैदिक पुराण ।।"
हो उठी अहल्या अति विह्वल ,
वह बोली प्रभु से जोड़ हाथ ।
"प्रभु ! जहाँ आपके चरण रहें ,
मेरा उस थल पर रहे माथ ।।

गुरु के समेत दर्शन पा कर
प्रभु ! ग्लानि हो गयी सब समाप्त ,
अनुपम करुणा की दृष्टि आपकी
रोम-रोम में हुई व्याप्त ।
आ गये आप, मिट गये पाप ,
संताप शाप, सब हुए दूर ,
प्रभु ! देख श्याम घन-सा शरीर
है नृत्य कर रहा मन-मयूर ।।

मुझको यह दें वरदान, आपका
प्रेम सहित मैं करूँ ध्यान ,
चरणों का वन्दन ही मेरे
इस जीवन का हो अनुष्ठान ।''
प्रभु हाथ उठा बोले 'तथास्तु'
उनका मुख-मण्डल था स-हास
इस क्षण कुछ शिष्यों के समेत
ऋषिवर गौतम आ गये पास ।।

प्रभु की पूजा कर भक्ति-भाव से
हुए सहज ही आप्त-काम
फिर बोले–'हम सब धन्य हो गये ,
दर्शन पा रघुवीर राम' !
गुरु सहित प्रफुल्लित थे लक्ष्मण
यह दृश्य देख कर अनुपमेय ,
यह कैसा संगम था जिसमें
मिल गये परस्पर प्रेय श्रेय ।।

प्रभु से आज्ञा पा देवि अहल्या
को, फिर अपने लिये संग—
ऋषि गौतम चले गये जैसे
आगे-आगे तट से तरंग ।।

यह अनुपम गाथा भ्रान्तियों से भरी थी ,
अतिशय पतिप्राणा लांछिता हो गयी थी ।
पतिव्रत-मय जो थी फूल-सी कंटकों में ,
नव उपवन में थी मालिनी-सी अहल्या ।।

रघुवर ! तुम ही हो सिद्धियों के प्रदाता ,
दृग तनिक उठा के देख लो सृष्टि सारी ।
अगणित अबलाएँ आज भी इन्द्र द्वारा ,
मधुमय प्रिय घातों से छली जा रही हैं ।।

□ □